बुद्धो भवेयं जगतो हिताय

बोधिप्रभ

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

(मानित विश्वविद्यालय)

सारनाथ, वाराणसी-221007

अंक-4 वर्ष-2024

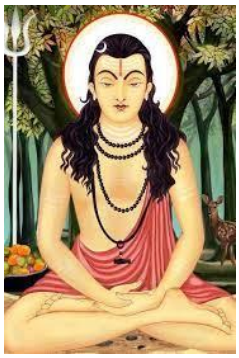

गोरखनाथ

गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के आरम्भकर्ता माने जाते हैं । गोरखपन्थी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात् मत्स्येंद्रनाथ हुए और उनके शिष्य थे गोरखनाथ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गोरखनाथ का योगमार्ग ही था। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें नवीं शती का मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उन्हें तेरहवीं शती का और डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल इन्हें ग्यारहवीं शती का मानते हैं। उनके ग्रन्थों की संख्या 40 मानी जाती है, किन्तु डॉ. बड़थ्वाल ने 14 रचनाएँ ही उनके द्वारा रचित मानी हैं, जिनके नाम हैं- सबदी, पद, प्राण संकली, सिष्यादरसन, नरवैबोध, अभैमात्राजोग, आतम-बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछींद्र-गोरखबोध, रोमावली, ग्यानतिलक, ग्यानचौंतीसा एवं पंचमात्रा।

गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के 'सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्रों वाला योगमार्ग चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता है और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीर वह है, जिसका चित्त विकार-साधन होने पर भी विकृत नहीं होताः

नौ लष पातरि आगे नाचैं, पीछैं सहज अषाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी षेलै, तब अंतरि बसै भँडारा॥

गोरखनाथ ने योग के कठिन मार्ग से अलग जीवन की सहजता पर जोर दिया हैः

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा
धीरैं धरिबा पावं।
गरबं न करिबा सहज रहिबा
भणत गोरष रावं।

बोधिप्रभ

[अंक-4]

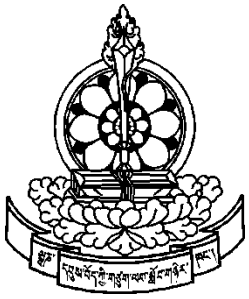

बुद्धो भवेयं जगतो हिताय

संरक्षक

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

सम्पादक

डॉ. सुनीता चन्द्रा

राजभाषा कार्यान्वयन समिति
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
सारनाथ, वाराणसी-221007

वर्ष-2024

सम्पादन समिति

डॉ. रामसुधार सिंह
प्रो. बाबूराम त्रिपाठी
डॉ. हिमांशु पाण्डेय
प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी
श्री भगवान पाण्डेय
डॉ. रमेश चन्द्र नेगी
श्री राजेश कुमार मिश्र
श्री टी.आर.शाशनी
डॉ. ज्योति सिंह
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. सुशील कुमार सिंह

सलाहकार परिषद

प्रो. उमेश चन्द्र सिंह
डॉ. दोर्जे दमदुल
डॉ. ल्हक्पा छेरिंग
प्रो. सत्य पाल शर्मा
डॉ. सत्य प्रकाश पाल

समीक्षा समिति

श्री सुनील कुमार
डॉ. शुचिता शर्मा
डॉ. ए.के. राय
डॉ. महेश शर्मा
डॉ. प्रशान्त कुमार मौर्य
डॉ. कर्मा सोनम पालमो
डॉ. रवि रंजन द्विवेदी

अंक-4, वर्ष-2024

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-221007

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी
कुलपति
Prof. Wangchuk Dorjee Negi
Vice Chancellor

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

संरक्षक की कलम से

यह मेरे लिए अपार हर्ष का विषय है कि राजभाषा कार्यान्वयन समिति, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी द्वारा राजभाषा की वार्षिक पत्रिका "बोधिप्रभ" के चौथे अंक का प्रकाशन किया जा रहा है और उसमें छात्रों, कर्मचारियों के आलेख भी संगृहीत किए गए हैं। पत्रिकाएँ किसी संस्थान के विचारों एवं मूल्यों को लोगों तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम हुआ करती हैं। निश्चित रूप से इस प्रकार के प्रयास अधिकारियों / कर्मचारियों में सृजनात्मक प्रतिभा को विकसित करने में सहायक होंगे एवं परिणामस्वरूप कार्यालयीन कार्य हिंदी में करने की प्रेरणा मिलेगी।

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की महती भूमिका को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान निर्माताओं ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया और अनुच्छेद 343 द्वारा देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकार किया। आज हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, जो इसकी वृहद् स्वीकार्यता और व्यापक फैलाव का द्योतक है। संविधान तथा राजभाषा के प्रावधानों की मंशा है कि राजभाषा हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग संघ के शासकीय कार्यों में हो। आज हिंदी बहुसंख्य नागरिकों को सुविधा एवं लाभ पहुँचाने में समर्थ है, क्योंकि इसकी प्रकृति हिन्दुस्तानी है, जिसमें अन्य भाषाएँ, बोलियाँ घुली-मिली हैं। अगर सरल हिंदी की बात होती है तो इसका तात्पर्य यह है कि व्यावहारिक बोल-चाल की भाषा का प्रयास हो। संविधान के अनुच्छेद-351 में भी उल्लेख किया गया है कि मुख्यतः संस्कृत और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को उसकी मूल प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना आत्मसात किया जाय। साथ ही राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय ने भी समय-समय पर जारी आदेशों के माध्यम से अन्य भाषा के प्रचलित शब्दों को आत्मसात करने की बात कही है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अनुसार मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने पर जोर दिया जा रहा है।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान एक विशिष्ट संस्था है, जिसका उद्देश्य, लक्ष्य एवं स्वरूप अन्य विश्वविद्यालयों से अलग है। इस संस्थान की स्थापना ही नालन्दा मूल की तिब्बती विद्या एवं बौद्ध परम्परा के संरक्षण के लिए की गई है, जिसको आगे बढ़ाने में संस्थान अनवरत प्रयासरत है। संस्थान उक्त विद्याओं के साथ-साथ आधुनिक विद्याओं का भी अध्ययन-अध्यापन तथा शोध कर रहा है। इस संस्थान द्वारा तिब्बती भाषा में अनूदित बुद्धवचन तथा तिब्बती विद्वानों द्वारा रचित शास्त्रों का हिंदी में अनुवाद का कार्य हो रहा है तथा इसी माध्यम से संस्थान हिंदी की सेवा कर रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि पत्रिका के माध्यम से संस्थान के अधिकारियों / कर्मचारियों में सृजनात्मक क्षमता का विकास होगा तथा प्रतिभा में निखार आने के साथ ही कार्यालयी कार्य हिंदी में करने की प्रेरणा मिलेगी।

मैं पत्रिका के प्रकाशन में सहयोग के लिए रचनाकारों एवं सम्पादक मंडल को धन्यवाद देता हूँ।

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

डॉ. सुनीता चन्द्रा
कुलसचिव
Dr. Sunita Chandra
Registrar

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

सम्पादकीय

राजभाषा की पत्रिका "बोधिप्रभ" के नूतन अंक (चौथे अंक) के प्रकाशन पर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ। तिब्बती संस्थान में राजभाषा की पत्रिका का प्रकाशन न केवल प्रशंसनीय प्रयास है, अपितु कार्यालय के अधिकारियों / कर्मचारियों के रचनाशील प्रतिभा की अभिव्यक्ति हेतु सुगम मंच भी प्रदान करती है। पत्रिका के प्रकाशन से संस्थान के सदस्यों में हिंदी में लेखकीय प्रतिभा में विकास होगा और सृजनात्मकता गुण विकसित होगा, जिसके परिणाम-स्वरूप राजाभाषा के कार्यालयीन कार्य को गति मिलेगी।

हमारी गृह पत्रिका ने निःसन्देह कार्यालय में हिंदी भाषा के प्रयोग में सतत् वृद्धि और हिंदी के प्रति सकारात्मक वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आगे भी यह क्रम जारी रहेगा।

पत्रिका में राजभाषा संबंधी लेख, बौद्ध दर्शन, कविता, सामाजिक लेख एवं संस्मरण से अलंकृत सुंदर संग्रह है, जो पाठकों के हृदय को स्फुरित करेगा।

'बोधिप्रभ' के प्रस्तुत अंक में प्रकाशित रचनाओं एवं पत्रिका के स्तर में निरंतर उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए रचनाकारों और सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ और वे निश्चित ही बधाई के पात्र हैं। साथ ही अनुरोध है कि अपने महत्वपूर्ण सुझावों से पत्रिका को और उत्कृष्ट बनाने में सहयोग करें।

धन्यवाद।

डॉ. सुनीता चन्द्रा

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	21वीं सदी में बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता	प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी	1-6
2.	चतुर्विध अनभिनिवेश, आयु-अभिषेक एवं पर्यावरण	डॉ. रमेश चन्द्र नेगी	7-23
3.	भाषा-चिंतन की अन्तर्वाही चेतना	डॉ. उदय प्रताप सिंह	24-30
4.	मुझे मेरा गाँव लौटा दो	प्रो. बाबूराम त्रिपाठी	31-37
5.	बौद्ध परिपथ की साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा	डॉ. रामसुधार सिंह	38-46
6.	संस्मरण, पंडित विद्यानिवास मिश्र - जो छूटता है वह नहीं मिलता	प्रो. मंजुला चतुर्वेदी	47-54
7.	रस्-फगस्(=आर्य-अवलोकितेश्वर) का तीर्थ-विवरण एवं अभिसमय	टी. आर. शाशनी	55-59
8.	मानक देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण	श्री भगवान पाण्डेय	60-70
9.	प्रयोजनमूलक हिन्दी	डॉ. अनुराग त्रिपाठी	71-73
10.	हिंदी साहित्य लेखन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका	आलोक कुमार पाण्डेय	74-79
11.	त्रिपिटक : संक्षिप्त परिचय- 2	डॉ. विजयराज वज्राचार्य	80-87
12.	हिन्दी साहित्य का काल विभाजन	डॉ. रवि गुप्त मौर्य	88-94
13.	मौन	डॉ. शुचिता शर्मा	95-97
14.	समाज में कृतज्ञता का महत्त्व	डॉ. अरुण कुमार राय	98-103
15.	विस्थापन की अंतहीन पीड़ा	डॉ. सुशील कुमार सिंह	104-105
16.	सेवा, समभाव और सौहार्दः राष्ट्र निर्माण के आलोक में	दीपंकर त्रिपाठी	106-110
17.	प्राकृतिक स्वरूप, संस्कृति एवं मानव-जीवन	एस. पी. सिंह	111-115
18.	स्पीति घाटी का इतिहास और संस्कृति	जिन्पा ज्ञाछो	116-119

19.	गेलुग सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि व परिचय	नीमा छेरिंग	120-121
20.	महायान से तात्पर्य	विक्रम जीत नेगी	122-129
21.	कविता	राजेश कुमार मिश्र	130-132
22.	कविता	ओम धीरज	133
23.	कविता	रामायण धर द्विवेदी	134
24.	कविता	अमित कुमार विश्वकर्मा	135
25.	राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा आयोजित कार्यक्रम		136-146
26.	कार्यालयों में दैनिक प्रयोग में आने वाले कुछ प्रचलित अंग्रेजी शब्दों/वाक्यों की हिंदी		147-148

•

नोट - पत्रिका में दी गई रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं।

21वीं सदी में बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता

—प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी—

आज व्यक्ति के स्वार्थ और अत्यधिक भौतिक इच्छाओं के चलते संसार भयंकर परिस्थितियों से गुजर रहा है। मानव-जाति के सम्मुख विनाश का खतरा उपस्थित है। मेरी दृष्टि में इसके दो मूल कारण हैं- प्रथम, आज दुनियां के विकसित राष्ट्रों के कर्णधार विश्व में शान्ति स्थापित करने हेतु अत्याधुनिक मारक प्रक्षेपास्त्रों एवं आणविक अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण को आवश्यक समझते हैं। यही नहीं, गरीब से गरीब देश भी अपनी जनता की दैनिक आवश्यकता रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि पर ध्यान दिये बिना विकसित राष्ट्रों के जो बेकार पड़े पुराने हथियार हैं, या उन विकसित राष्ट्रों की वर्षों पुरानी पड़ी टेक्नोलॉजी हैं, उनको अपने देश में विकास हेतु धन खर्च करके अथवा अन्य प्रकार से एकत्रित कर अपने से कमजोर राष्ट्रों पर अपना दबदबा बनाना चाहते हैं। निश्चय ही भौतिकवादी, साम्राज्यवादी शक्ति से सम्पन्न राष्ट्रों का जिनके पास ठोस आध्यात्मिक संस्कृति का आधार नहीं है, विश्व को अस्थिर एवं अशान्त करने में बहुत बड़ा हाथ है। क्या ये विकसित राष्ट्र अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर विश्व में जहाँ चाहे उपद्रव नहीं मचा रहे हैं?

दूसरा, अध्यात्म के तथाकथित गुरु, सन्त, मौलाना, फादर आदि यह मानकर चलते हैं कि जब तक सम्पूर्ण विश्व में उनके धर्मों की छत्रछाया नहीं हो जाएगी, दुनिया में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। इसके चलते धर्म-परिवर्तन के लिये प्रलोभन से लेकर शक्ति का प्रयोग करने तथा मौत के घाट उतारने तक को वे धर्म की मान्यता बतलाकर विश्व में धर्म के नाम पर हिंसा, अशान्ति एव अस्थिरता को बढ़ावा दे रहे हैं; जबकि यह कतई संभव नहीं है कि दुनिया के सभी लोग किसी एक धर्म के अनुयायी बन जाए। इन धर्मों के संस्थापक जो स्वयं भगवान्, पैगम्बर या महात्मा थे, जब वे स्वयं ऐसा नहीं कर सके तो क्या आज ये धार्मिक नेता ऐसा कर सकेंगे? यह तो वैसा ही है जैसे एक व्यक्ति दुनिया के सभी लोगों के शरीर की संरचना और वाणी का लय अपने सदृश बनाना चाहे। क्या यह संभव होगा? उसी प्रकार मन या चित्त जो काय-वाक की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म है, क्या सभी लोगों में एक जैसा विचार पैदा करने वाला बनाया जा सकता है?

आज धर्म मन्दिर, मस्जिद, चर्च आदि के भव्य निर्माण और बाह्य कर्मकाण्ड जैसे आडम्बरों तक सीमित हो गया है। कोई भी धर्म के तथ्य को जानने का प्रयास नहीं करता।

यह वैसा ही है जैसे कोई माली फूल की सुरक्षा के लिए कोमल कपड़े का टुकड़ा लिये फूल की टहनी और पत्ते पर धूल साफ करता रहे और उसका जड़ जो पानी और खाद के अभाव में सूखता जा रहा है, उसकी ओर ध्यान तक न दे। इससे क्या उस फूल की सुरक्षा हो सकती है? ऐसे ही आज के तथाकथित आध्यात्मिक लोगों का भी व्यवहार है। जहाँ शरीररूपी राष्ट्र के कर्णधार और चित्तरूपी आध्यात्मिक लोग दोनों शान्ति के पथ से भ्रष्ट हो चुके हों, वहाँ बौद्ध धर्म की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। आज हम संसार में सभी समस्याओं को आर्थिक, राजनीतिक और कूटनीतिक रूप से हल करना चाहते हैं तथा वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण आदि कहकर उनका समाधान बाहर खोजना चाहते हैं। ऐसा कर वे समस्या के मूल को नहीं समझ पा रहे हैं, क्योंकि इस प्रकार की सभी समस्याएँ भौतिकवादी संस्कृति की उपज हैं। उनका दृष्टिकोण बाह्य जगत तक ही सीमित है, जबकि तथागत ने उसका मूल व्यक्ति के अन्दर विद्यमान तृष्णा एवं अहम् आदि विकृत मानसिकता अर्थात् क्लेशों को कहा है। क्या ये समस्याएँ व्यक्तियों द्वारा निर्मित नहीं हैं, स्वार्थ की उपज नहीं हैं? ऐसे में क्या स्वार्थ पर आधारित आर्थिक एवं राजनीतिक विचार उसका समाधान कर सकता है? इसे आज अपने को सुयोग्य एवं सर्वज्ञ मान बैठे राजनेताओं को समझना होगा। साथ ही, नित नये खोज करने वाले वैज्ञानिकों तथा टेक्नीशियनों को भी समझना होगा कि व्यक्ति मात्र भौतिक नहीं है, अपितु वह भौतिकपुंज के साथ-साथ चेतना का भी अभिन्न स्वरूप है।

यदि आज व्यक्ति सबसे ज्यादा दुःखी है तो वह भौतिक अभाव के कारण उतना नहीं है, जितना अपने चित्त की सही समझ के अभाव से है। अतः यदि वैज्ञानिक युद्ध एवं दूसरों को भयभीत करने वाले अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की जगह मानव-कल्याण के विकास के लिए काम करते तो आज दुनिया इस भयावह परिस्थिति से नहीं गुजरती, अपितु आभ्यन्तर शान्ति के साथ-साथ समतामूलक भौतिकता का विकास हुआ होता।

तथागत ने तृष्णा को इस संसार में जन्म का कारण बताया। यही दुःख का कारण है। जब तक व्यक्ति के अन्दर तृष्णा, राग, द्वेष, मोह, अहंकार, कपट है, तब तक वह कैसे सुखी हो सकता है? दुनिया में जितने भी युद्ध, अत्याचार, अन्याय हो रहे हैं, वह मनुष्य के विकृत मन का प्रकटीकरण नहीं तो और क्या है? क्या युद्ध, अत्याचार, अन्याय आदि का विचार मन में उत्पन्न हुए बिना कार्य के रूप में प्रकट हो सकता है? अतः हमें चाहिए कि मन में सदैव अच्छे संस्कार डालें। एक बार महान वैज्ञानिक आईन्सटीन ने भी कहा था कि छोटी-सी अणुशक्ति भी इस ब्रह्माण्ड को हिलाकर रख देने की क्षमता रखती है, लेकिन वह अणुशक्ति मन को दिशा नहीं दे सकती। ऐसा है हमारे मन का स्वभाव। धार्मिक और नैतिक निर्देशन के

बिना इस मन को नियमित नहीं किया जा सकता। अतः उनका कहना था कि केवल भौतिक ज्ञान और कार्य करने की कुशलता से मानव एक सुखी और प्रतिष्ठापूर्वक जिन्दगी नहीं बिता सकता। वस्तुनिष्ठ सत्य की खोज करने वालों की अपेक्षा नैतिक मापदण्डों की साधना करने वालों का स्थान ऊँचा है। बुद्ध आदि आध्यात्मिक गुरुओं ने मानव इतिहास में भौतिकवादी विचारकों की अपेक्षा मानवता की सेवा अधिक की है।

सारांश में मैं यह कहूँगा कि इस बात को गहराई से समझने की आवश्यकता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व मात्र भौतिक शरीर तक सीमित नहीं है, अपितु मन या चित्त भी है। बौद्धों की दृष्टि से व्यक्ति पञ्चस्कन्धात्मक (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) है, जिसमें से चार स्कन्ध चित्त-चैतसिक धर्म हैं और 'रूप' ही एकमात्र भौतिक या जड़ रूप है। अतः इन दोनों में सन्तुलन बनाये रखना शान्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हम केवल भौतिक उपलब्धि तक सीमित रहे तो कभी शान्त एवं सुखी नहीं हो सकते और न ही अध्यात्म मात्र के साथ रहकर सुखी हो सकते हैं। इसलिए आध्यात्मिक लोगों को न भौतिक विकास की अवहेलना करनी चाहिए और न ही भौतिकवादियों को आध्यात्मिक विचारों की। अतः हमें अपने मन एवं विचारों पर भी केन्द्रित होना होगा। उदाहरण के लिए, जब हमें गर्मी लगती है तो हम प्रयास करते हैं कि पंखा चलायें या कोई अन्य उपाय करें। जब भूख लगती है तो भोजन-पानी की व्यवस्था करते हैं, जिससे गर्मी या भूखरूपी दुःखों से छुटकारा मिल सके। इसी परिप्रेक्ष्य में यदि हम देखें तो क्या कभी भी हमने राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि से पीड़ित होने पर उससे मुक्त होने का प्रयास किया, अन्तर्मुखी होकर उसके कारणों को खोजने का प्रयास किया? यदि नहीं तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि हम सुखी हों और शान्त हों? इसलिए जिस प्रकार हम अपने भौतिक शरीर की सुख-सुविधाओं के लिए रोटी, कपड़ा, मकान आदि की व्यवस्था करते हैं और शरीर बनाने, सँवारने के लिए समय एवं धन खर्च करते हैं, क्या उसी प्रकार उतना अध्यात्म के लिए समय देते हैं, उनके विकास के लिए कुछ व्यय करते हैं? अतः हमें चाहिये कि जितना हम शरीर की सुख-सुविधाओं के लिए बेचैन रहते हैं, तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार से मन की शान्ति के लिए भी हमें अपने अन्दर मौजूद राग, द्वेष और मोह आदि क्लेशों को दूर करने के लिए करुणा, शील, समाधि और प्रज्ञा आदि को उत्पन्न करने के लिए प्रयास करना चाहिए। तभी हम वास्तव में शान्त एवं सुखी होंगे। यदि व्यक्ति शान्त है तो निश्चित रूप से समाज भी शान्त होगा, क्योंकि व्यक्ति के समूह का नाम ही तो समाज है। समाज के समूह का नाम ही राष्ट्र एवं विश्व है। इस तरह व्यक्ति में शान्ति होने से ही सम्पूर्ण विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। अतः विश्व में वास्तविक शान्ति के लिए वैयक्तिक स्तर

पर शान्ति को उत्पन्न करना होगा। शान्ति कोई नियम एवं कानून द्वारा स्थापित नहीं की जा सकती। शान्ति को अपने मन में करूणा आदि मानवीय गुणों के आधार पर पैदा करना संभव होगा।

यहाँ मैं बौद्ध धर्म की कुछ विशेषताओं को दिखलाना चाहूँगा, जो अन्य धर्मों की अपेक्षा 21 वीं सदी के मानव के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं।

(1) बौद्ध धर्म के अनुसार सृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। वह स्वयं अपना और अपने संसार का भाग्य-विधाता है। दुनिया के अच्छा-बुरा होने के पीछे मनुष्य की अच्छाई या बुराई एकमात्र कारण है। मनुष्य अपने दुःख और सुख का कारण स्वयं है। यथा-

अत्ता हि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परोसिया ।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथ लभति दुल्लभं ॥ (धम्मपद, 12/4)

(2) बुद्ध ने कहा है जैसे माता अपने इकलौते पुत्र की रक्षा के लिए अपने जान की परवाह नहीं करती, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिये उनके प्रति सीमा रहित मैत्री भावना का विस्तार करे। उन्होंने सम्पूर्ण प्राणिमात्र को अपने जन्म-जन्मान्तरों की माता कहा है। यथा-

माता यथा नियं पुत्तं आयुसा पुत्तमनुरक्खे।
एवं पि सब्ब भूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं ॥ (सुत्तनिपात 1/8)

(3) बुद्ध ने मनुष्यों के हित के लिए धर्मों की भी सीमा बताई है। धर्म सिर पर ढोने के लिए नहीं है। वह बाँस से बने उस बेड़े के समान है, जिसके सहारे असहाय आदमी नदी पार कर जाता है, किन्तु नदी पार करने के उपरान्त बेड़े को वहीं छोड़ देता है। यहाँ अधर्म की तो बात ही क्या, धर्म को भी छोड़ना होगा। यदि संसार के धार्मिक कट्टरपंथी इस वास्तविकता को समझते तो आज सभी धार्मिक समस्याएँ सुलझ गयी होती। यथा, मज्झिमनिकाय (1/22) में कहा है-

भिक्षुओ, मैं बेड़े की भाँति पार जाने के लिए तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़कर रखने के लिए नहीं। बेड़े की तरह धर्म को जानने वालों के लिए धर्म भी छोड़ने लायक है, अधर्म की तो बात ही क्या!

(4) उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि मैंने जो कुछ भी बताया है, उसकी पूरी परीक्षा कर लो, तभी उसको मानो यथा-

तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितैः ।
परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात् ॥

(5) जाति के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है, जन्म से न कोई नीच होता है और न श्रेष्ठ कर्म से ही व्यक्ति नीच और श्रेष्ठ होता है। यथा-

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो ॥ (धम्मपद, 24)

6) बौद्ध धर्म काल्पनिक ईश्वर, भगवान, आत्मा-परमात्मा आदि जिसे किसी ने नहीं देखा, ऐसे विचारों से ऊपर उठकर दैनिक जीवनचर्याओं में उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख आदि ज़मीनी या ठोस धरातल की बात करता है। दुःख के कारण और उसके निवारण की खोज के लिए बुद्ध की शिक्षा की यही दिशा है।

यही कारण है तथागत बुद्ध चार आर्यसत्य और आष्टांगिक मार्ग तथा त्रिशिक्षा से सम्बन्धित बात करते हैं, शील, समाधि और प्रज्ञा की बातें करते हैं।

(7) बौद्ध धर्म का उद्देश्य बहुजन हित और बहुजन सुख है; जैसा कि विनय महावग्ग में कहा है– **'चरथ भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजन- सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।'** अर्थात् भिक्षुओं, बहुत जनों के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओं, आदि में कल्याण, मध्य में कल्याण, अन्त में कल्याण इस धर्म का उपदेश करो।

(8) अपने धर्म के मर्म को समझाते हुए उन्होंने कहा है- सभी पापों को न करना, पुण्य का सम्पादन करना और अपने ऊपर नियन्त्रण रखना – यही बुद्ध धर्म है। यथा-

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान-सासनं ॥ (धम्मपद, 276)

(9) दर्शन के सम्बन्ध में सभी धर्मों को प्रतीत्यसमुत्पन्न कहा है-

अस्मिन् सति इदं भवति, अस्योत्पाददिदमुत्पद्यते ।
ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषाञ्च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥

(10) जिस प्रकार चीनी का एक कण भी मीठा होता है, उसी प्रकार बुद्ध की प्रत्येक शिक्षा एवं उपदेश का प्रयोजन एकमात्र परम शान्त, अप्रतिष्ठित निर्वाण को प्राप्त कराना होता है। भवतु सब्ब मङ्गलम्।

निबन्धावली से साभार

के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

चतुर्विध अनभिनिवेश, आयु-अभिषेक एवं पर्यावरण

—डॉ. रमेश चन्द्र नेगी—

अनिरोधमनुत्पादमनुच्छेदमशाश्वतम् ।
अनेकार्थमनानार्थमनागममनिर्गमम् ॥
यः प्रतीत्यसमुत्पादं प्रपञ्चोपशमं शिवम् ।
देशयामास सम्बुद्धस्तं वन्दे वदतां वरम् ॥[1]

त्रैकालिक **बुद्धों** द्वारा किया गया उपदेश समस्त सत्त्वों के आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति की लिए है। अन्य शब्दों में कहें तो समस्त सत्त्व जो संसार में मात्र दुःखों का ही अनुभव करते हैं, उनको वास्तविक सुख अर्थात् **निर्वाण** अथवा महासुख की प्राप्ति कराना ही **बुद्धों** का परम लक्ष्य होता है। वह **महासुख** जिसे उपरिलिखित श्लोक में समस्त प्रपञ्चों से रहित कहा गया है, वह आठ गुणों से सम्पन्न है। उस निष्प्रपञ्च अवस्था की प्राप्ति के मार्गों को आचार्य **अतीश** (982-1054) ने **बोधिपथप्रदीप** में तीन भागों में विभाजित किया है, यथा–

पुरुषास्त्रिविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः ।
लिख्यते लक्षणं तेषां प्रत्येकं भेदतः स्फुटम् ॥[2]

अर्थात् भगवान् तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के मार्ग पर चलने वाले लोग 1. अधम, 2. मध्यम तथा 3. उत्तम के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। यहाँ पर उन तीनों के लक्षणों को बहुत ही स्पष्ट रूप से लिखा जा रहा है।

भोटदेश में बौद्धधर्म का विकास :

जैसे कि सर्वविदित है, **भोट**देश में **बौद्धधर्म** का बीज वपन वहाँ के 28वें राजा **ल्हा थो-थो-री ञन-च़न** (254-374) के समय हुआ। इनके काल में उनके राजमहल के ऊपर **पङ-कोङ छग-ग्या** और चिन्तामणि धारणी आदि पवित्र वस्तुएँ उतरी थीं। **ल्हा थो-थो-री ञन-च़न** को **समन्तभद्र** का निर्मितकाय माना गया है।[3] उपर्युक्त पवित्र वस्तुओं की प्राप्ति के

---

1. **माध्यमिककारिका**, 1.1
2. **बोधिपथप्रदीप,** श्लोकसं०–2
3. **थु-हु-कान् डुब्-थाह्**, पृ०–49, प्रका०–**मि-रिग्स पे-टुन-खङ**, सन् 1985

बाद राजा को यह व्याकरण (भविष्यवाणी) भी हुआ कि आपके पाँचवें वंशज इसके अर्थ को जानेंगे। इन पवित्र वस्तुओं का नामकरण **ञन-पो सङ-वा** किया गया।

ल्हा थो-थो-री ञन-च़न के बाद इनके 5वें वंशज के रूप में सम्राट **स्रोङ-च़न गम्पो** (617-650) का आगमन हुआ। भोटदेश के महान् वैयाकरण और प्रथम लिपि-निर्माता **थुन-मी सम्भोट**, सम्राट **स्रोङ-च़न गम्पो** के प्रोत्साहन पर ही **आर्यदेश भारत** आये और यहाँ के महान् गुरुओं के सान्निध्य में रहकर इन्होंने अनुपम विद्वत्ता को प्राप्त किया। कहा जाता है कि **सम्भोट** ने कारण्डव्यूहसूत्र, **पङ्-कोङ् छग्-ग्या** तथा **रत्नमेघसूत्र** आदि का पहली बार संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद भी किया। धर्म के प्रति विशेष रूप से कठोर होने के कारण ही सम्राट का नाम **स्रोङ-च़न** पड़ा।[1] इन्होंने यहाँ के लोगों को कुशलकर्मों सहित **समाधि** का भी अभ्यास कराया।

इनकी दो रानियाँ थीं, एक नेपाल से तथा दूसरी चीन से। नेपाल नरेश **रश्मि-वर्म (होद-ज़ेर गो-छा)** की पुत्री **बल्-मो ठि-च़ुन्** अपने साथ अक्षोभ्यवज्र मैत्रेय एवं चन्दन की बनी आर्या तारा की मूर्ति लेती गयीं तथा चीनी राजा **सेङ-गे च़न-पो** की पुत्री **ग्या-मो कोङ-जो** भी अपने साथ बारह वर्ष के आकार की **जो-वो शाक्यमुनि** की मूर्ति लेती गयीं।[2] दोनों ने ही इन पवित्र मूर्तियों को स्थापित करने के लिए क्रमशः **र-स ठुल्-नङ्** तथा **रमो-छे** के देवालयों का निर्माण कराया।[3]

भोटदेश के 39वें राजा **ठि-स्रोङ दे-च़न** (718-785) थे। इनके काल को भोटदेशीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जा सकता है। **बौद्धधर्म**, जिसका **ल्हा थो-थो-री ञन्-च़न्** के समय बीज वपन हुआ, सम्राट स्रोङ-च़न गम्पो के समय जो धर्म अंकुरित हुआ वही सम्राट **ठि-स्रोङ दे-च़न** तक आते-आते फल रूप में परिवर्तित हो गया। **तिब्बत** के इतिहास में **खन्-लोब्-छोस्-सुम्** का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। इन तीन महान् व्यक्तियों के कारण ही आज हम **भोट बौद्धधर्म** की इतनी समृद्ध परम्परा को देख पा रहे हैं। उपाध्याय **शान्तरक्षित**, आचार्य **पद्मसम्भव** और धर्मराज **ठि-स्रोङ् दे-च़न्** को ही हम **खन्-लोब्-छोस्-सुम्** के नाम से जानते हैं।

---

1. **बु-तोन् छोस्-जुङ्**, पृ०–182, प्रका०–**डस्-पुङ् लो-सल्-लिङ् पे-ज़ोद्-खङ्**, सन् 1990
2. **बु-तोन् छोस्-जुङ्**, पृ०–182
3. **वही**, पृ०–183

भोटदेश में **सर्वास्तिवाद** परम्परा के 12 भिक्षुओं को आमन्त्रित कर सर्वप्रथम **बौद्धसंघ** की स्थापना की गई। ये सात भिक्षु **सद्-मी दुन्**[1] के नाम से प्रसिद्ध हुए। तिब्बत में प्रथम बौद्धविहार की स्थापना की गई, जो **सम्-यस्** विहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह विहार **भारत** के **ओदन्तपुरी** विहार के प्रतिरूप बनाया गया और यह भव्य विहार लग-भग 13 वर्षों में बन कर तैयार हुआ।[2]

सम्राट **ठि-स्रोङ दे-च़न** के शासनकाल में **बौद्धधर्म** का जो विकास हुआ इसके विषय में भारतीय आचार्य **दीपंकरश्रीज्ञान** का कहना था कि '**भोट**देश में जो सद्धर्म का **शासन** स्थापित हुआ है, इतना तो स्वयं आर्यदेश भारत में भी नहीं हुआ है। ये सभी कार्य उपाध्याय **शान्तरक्षित**, आचार्य **पद्मसम्भव** तथा राजा **ठि-स्रोङ् दे-च़न्** के कारण ही सम्भव हो पाया है।'[3]

भोटदेशीय बौद्धों के चार महान् सम्प्रदाय :

तिब्बत में **बौद्धधर्म** का विकास मध्य के कुछ काल को छोड़कर निरन्तर गति से आगे बढ़ते रहा और यहाँ पर **बौद्धधर्म** के मुख्य चार बड़े सम्प्रदाय अस्तित्व में आये। सबसे प्राचीन सम्प्रदाय **ञिङ्मा** कहलाता है। तत्पश्चात् **कर्ग्युद्, साक्या** और **गेलुग्** सम्प्रदायों का क्रमशः प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार आज हम **भोट**देशीय बौद्धों के इन्हीं चार मुख्य सम्प्रदायों से परिचित हैं और तत्सम्बन्धित महान् गुरुओं से उपदेशों को प्राप्त करते रहते हैं।

भोटदेशीय इन चार प्रमुख सम्प्रदायों के विषय में परमपावन **दलाई लामा** ने अपने **बालमतिनयनोन्मीलक (लेग्स-शद् लो-सर् मिग्स-जेद्)** नामक ग्रन्थ में लिखा है–"सन् 910 ई0 में **ओडियान** के महाचार्य **पद्मसम्भव** का **तिब्बत** आगमन हुआ और **सम्-यस् छिम्स-फु** में आठ महान् साधन-पिटक आदि तन्त्र एवं अनेक साधनापोय ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। **जे-बड्स पच्चीस** आदि भाग्यवान् एकत्रित शिष्यों के लिए **महागुह्यवज्रयान-धर्मचक्र** का प्रवर्तन किया। इससे क्रमशः परम्परा के आगे बढ़ने के कारण तान्त्रिक **ञिङ्मा**-सिद्धान्त अस्तित्व में आया।"[4]

---

1. 1. **वा-मञ्जुश्री**, 2. **वा-रत्नरक्षित,** 3. **डन-का मुतिका**, 4. **लङ-कतन**, 5. **खोन् नागेन्द्र**, 6. **प-गोर वैरोचन** एवं 7. **च़ङ्स देवेन्द्र**।
2. **बु-तोन् छोस-जुङ**, पृ०–186
3. **पद्माकरपो-विरचिता पूर्वयोग-टिप्पणी** (**भूमिका**), पृ०–56
4. **सामयिक डुग प्रतिध्वनि**, पृ०–10, प्रकाशक–**डुगपा युवा बौद्ध समिति**, **किन्नौर** (2008)

"सन् 1012 ई0 में उत्पन्न **मर्-तोन् छोस्-की लो-डोस्** (1012-1099) भारत में तीन बार आये। ये पण्डित **नरोपा** (1066-1100) और **मैत्रीपा** आदि नाना गुरुओं के चरणों में रहे। प्रामाणिक शास्त्रों का प्रवचन सहित अनुवाद किया। मर्-पा सहित भट्टारक **मि-ला रस्-पा** (1040-1123) और अप्रतिम **द्रग्स-पो ल्हा-जे** (1079-1153) आदि से आयी परम्परा **का-ग्युद-पा** सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। **का-ग्युद-पा** का **कम्-छ़ङ्-पा, डि-गुङ्-पा, तग्-लुङ-पा** और **डुग्-पा** आदि भेद हैं, जो चार **महा-का-ग्युद-पा** और आठ लघु **का-ग्युद** के नाम से प्रसिद्ध है।"[1]

"सन् 1034 ई0 में पैदा हुए **खोन् कोन्-चोग् ग्यल्-पो** ने **डोग्-मी लो-च़ा-वा** से **नालन्दा** के उपाध्याय **श्रीधर्मपाल**, जिनका सिद्धि प्राप्त करने के बाद **विरूपा** नाम पड़ा, वे और महापण्डित **गयाधर** की परम्परा का **मार्ग-फल (लम्-डस्)** श्रवण कर पञ्चविध **स-छेन् गोङ-मा** आदि से आयी परम्परा को **साक्य-पा** सिद्धान्त कहा जाता है।"[2]

"सन् 1039 ई0 में **विक्रमशिला** (महाविहार) के महान् विद्वान् (आचार्य) **दीपंकर-श्रीज्ञान तिब्बत** में पधारे और सूत्र-तन्त्र सम्बन्धित गम्भीर धर्म को विस्तृत रूप से फैलाया। इस प्रकार **खु (च़ोन्-डुस् युङ्-डुङ्), ङोग् (लेग्स-पई शेस्-रब्), डोम् (ग्यल्-वई जुङ्-नस्)** इन तीनों से आगे बढी परम्परा **का-दम** नाम से प्रसिद्ध हुई। इन्हीं के उपदेश परम्परा को ग्रहण करने वाले सन् 1357 ई0 में जन्मे **मञ्जुनाथ** महान् **च़ोङ-खा-पा (जे लो-ज़ङ-डग्स-पा)** ने (**तथागत सम्यक् सम्बुद्ध**) के वचन और उनके अभिमत की प्रामाणिक व्याख्या-कर्ता, शास्त्रों को, जो भोट-भाषा में अनूदित किये गये हैं, उन सभी का श्रवण, चिन्तन एवं मनन करके संशय रहित होकर प्रवचनों के गम्भीरार्थ में भ्रमित न होते हुए अच्छी तरह उपदेश किया। इनके प्रति आज्ञा प्राप्त **ग्यल्-छ़ब् (दर्-मा रिन्-छेन्)** एवं **खस्-डुब् (गे-लेग्स पल्-ज़ङ्)** आदि की परम्परा को हिमालयीय **गे-लुग्स-पा** सिद्धान्त कहा जाता है।"[3]

मार्गक्रम (लम्-रिम्) :

उपर्युक्त हिमालयीय बौद्ध सम्प्रदायों के संक्षिप्त परिचय के बाद अब मूल विषय को प्रतिपादित किया जा रहा है।

---

1. **वही**, पृ०–10
2. **वही**, पृ०–10
3. **वही**, पृ०–10

जैसे प्रारम्भ में ही कहा गया है कि **बुद्ध** का मूलधर्म तीन मार्गक्रमों में समाहित हो जाता हैं। ये त्रिविध **मार्गक्रम** 1. अधमपुरुष-मार्ग, 2. मध्यमपुरुष-मार्ग और 3. उत्तमपुरुष-मार्ग के नाम से जाने जाते हैं।

पुरुष पद का अर्थ यहाँ **लिङ्ग**वाची न होकर **सामर्थ्य** का द्योतक है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस किसी भी व्यक्ति में **पौरुष** अर्थात् **शक्ति** का भाव है, वह इस प्रसंग में **पुरुष** नाम से जाना जायेगा। वह स्त्री भी हो सकती है और पुरुष भी। इस प्रकार **अधमपुरुषमार्ग** का अर्थ हो जायेगा, जिसमें अत्यल्प शक्ति है, जिसके द्वारा वह केवल सांसारिक सुख अर्थात् अभ्युदय-पद को ही प्राप्त कर सकता है–ऐसा मार्ग।

इसी तरह **मध्यपुरुषमार्ग** का अर्थ होगा–जिसमें शक्ति मध्यम प्रकार की है। अर्थात् इस प्रकार के पुरुष में पहले **अधमपुरुष** से कुछ ज्यादा शक्ति होती है। यह पुरुष मोक्ष रूपी पद को प्राप्त कर सकता है। यह मोक्ष भी निःश्रेयस् के अन्तर्गत ही आता है। **निःश्रेयस्** के अन्तर्गत हम 1. **मोक्ष** तथा 2. **सर्वज्ञता** इन दो पदों की गणना करते हैं।

तत्पश्चात् जिसमें सर्वाधिक शक्ति है, वह **उत्तमपुरुषमार्ग** का व्यक्ति होगा। यह मार्ग **बोधिसत्त्वमार्ग** के नाम से भी प्रसिद्ध है। **बोधिचित्त** के विना सर्वज्ञ-पद की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। **बोधिचित्त** के अन्तर्गत महान् शक्ति का संचार होता है। यह एक महान् शक्ति है, जिसके द्वारा वह **बोधिसत्त्व** संसार के समस्त सत्त्वों के कल्याण हेतु अहोरात्र कल्याण कार्य के प्रति अपने को समर्पित करता है। इसलिए एक बोधिसत्त्व प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में इस प्रकार की प्रार्थना करता है, यथा आचार्य **दीपंकरश्रीज्ञान** ने कहा है–

"बुद्धं च धर्मञ्च गणोत्तमं च यावद्धि बोधिं शरणं गतोऽस्मि।
दानादिकृत्यैश्च कृतैर्मयैभिः बुद्धो भवेयं जगतो हिताय॥

यावद् बोधि(-मण्ड) पर्यन्त मैं–बुद्ध, धर्म और श्रेष्ठ संघ की शरण में जाता हूँ। मेरे द्वारा किये गए इन दान-आदि कृत्यों से जगद्धितार्थ (अर्थात् जगत् हित के लिए, मेरा) बुद्धत्व सिद्ध हो।"[1]

अतः यह **उत्तमपुरुषमार्ग** अथवा **बोधिसत्त्वमार्ग** उपर्युक्त तीनों मार्गों में सर्वोत्तम है। एक मार्गीय पुद्गल यह भी भली प्रकार जानता है कि ये तीनों मार्ग **चर्या** की दृष्टि से एक दूसरे के विरुद्ध नहीं हैं। इन्हें एक साधक को क्रमशः प्राप्त करना पड़ता है।

---

1. **अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः** (**बोधिसत्त्वादिकर्मिक-मार्गावतार-देशना**), पृ०–82, 122, प्रका०–**केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी** (1992)

सद्धर्म हेतु दुर्लभ काय की प्राप्ति :

सुख का मूल **सद्धर्म** है और **सद्धर्म** को प्राप्त करने वाला यह काय संसार में बार-बार प्राप्त नहीं होता। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव-काय स्वयं में बहुत ही दुर्लभ है। आचार्य **शान्तिदेव बोधिचर्यावतार** में कहते हैं–

क्षणसम्पदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः ॥[1]

आठ क्षण तथा **दस सम्पत्** से युक्त शरीर मिलना बड़ा ही कठिन है। किन्तु इस समय हमें उपर्युक्त गुणों से युक्त शरीर प्राप्त हुआ है । ऐसे शक्तिसम्पन्न शरीर को ही यहाँ **पुरुषार्थसाधनी** कहा गया है, क्योंकि इस प्रकार के इस काय द्वारा हम **सद्धर्म** के उपरिलिखित तीन प्रकार के मार्गों पर सरलता से चल सकते हैं। परन्तु यदि इस प्रकार के गुणों से युक्त शरीर प्राप्त होने पर भी यदि हम सद्धर्म का अभ्यास समय रहते नहीं करते हैं और हम कुशलधर्म के सम्पादन से दूर हो जाते हैं, तब मृत्यु के बाद पुनः ऐसे शरीर की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

आठ क्षण तथा दस सम्पत् :

आठ क्षण एवं **दस सम्पत्** के विषय को स्पष्ट करते हुए भोटदेशीय महान् साधक **छोस-जे गम्पोपा** अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **मोक्षालंकार** में कहते हैं–

"यहाँ **क्षण** से अभिप्राय **आठ अक्षणों** से रहित होना है। जैसा कि **स्मृत्युपस्थानसूत्र** में कहा है– "नरक, प्रेत, तिर्यक, म्लेच्छ, दीर्घायुष देव, मिथ्या दृष्टि, बुद्ध से रहितता और मूकता–ये आठ **अक्षण** हैं।"[2]

"ये किस प्रकार **अक्षण** हैं? क्योंकि **नरक (ञल्-वा)** सदैव दुःखमय होता है, **प्रेत (यि-दग्स)** का चित्त संतप्त रहता है और **तिर्यक् (दुद्-डो)** मोह-बहुल होता है। इस प्रकार इन तीनों में **ह्री (ङो-छ)** और **अपत्रपा (ठेल्-मेद्-पा)** नहीं होती। फलतः उनकी सन्तति (कुशल धर्म के अभ्यास के) योग्य नहीं होती है। अतः इन (गतियों) में धर्म के अनुष्ठान का अवसर नहीं रहता है।"[3]

---

1. **सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालंकार**, पृ०–12
2. **वही**, पृ०–12
3. **वही**, पृ०–13

"**दीर्घायुषदेव (ल्हा छे-रिङ-पो)** असंज्ञी सत्त्व होते हैं। उनका विज्ञान (नम्-शेस्) सपरिवार उच्छिन्न हो चुका होता है, जिस कारण उसमें धर्म के अनुष्ठान का अवसर नहीं रहता है।...इसलिए (नरक, प्रेत, तिर्यक् और देव इन) चार गतियों को **अक्षण** कहा गया है।"[1]

"**मनुष्य** के रूप में जन्म लेने पर भी **म्लेच्छ (ल-लो)** का किसी सत्पुरुष से सम्पर्क होना कठिन होता है, मिथ्यादृष्टि से युक्त होने पर (व्यक्ति) कुशल (कर्म) को स्वर्ग और मोक्ष आदि का हेतु नहीं मानता, **बुद्ध-विहीन लोक** में उत्पन्न होने पर कर्तव्य और अकर्तव्य का निर्देश करने वाला कोई नहीं होता है और **मूक** होने पर सुभाषित और दुर्भाषित धर्म का स्वयं विवेचन नहीं कर सकता। अतः (**नरक** आदि) आठ अक्षणों से असम्बद्धता को **क्षण-संपत्** कहा गया है।"[2]

"**सम्पत्** दस हैं–पाँच **स्व-सम्पत्** और पाँच **पर-सम्पत्** । उनमें से **पाँच स्व-सम्पत्** इस प्रकार हैं–1. मनुष्यत्व, 2. मध्यदेश में जन्म, 3. इन्द्रियों की पूर्णता, 4. अविपरीत कर्म और 5. अधिष्ठान के प्रति श्रद्धा।"[3]

"उनमें से **मनुष्यत्व** से तात्पर्य मनुष्य के समान प्रकृतिवाला एवं पुरुष अथवा स्त्री इन्द्रिय से युक्त होना है। **मध्यदेश** में जन्म से तात्पर्य ऐसे देश में जन्म लेना है जहाँ सज्जनों के साथ संगति का अवसर प्राप्त हो। **इन्द्रियों की पूर्णता** से तात्पर्य **मूढ** तथा **मूक** न होकर कुशलधर्म के अनुष्ठान में समर्थ होना है। **अधिष्ठान के प्रति श्रद्धा** से तात्पर्य बुद्ध द्वारा उपदिष्ट विनय आदि समस्त कुशल धर्मों के अधिष्ठानभूत सद्धर्म के प्रति श्रद्धा है। **अविपरीत कर्म** से तात्पर्य इस जन्म में (**पितृवध** आदि) आनन्तर्य कर्म न करना है।"[4]

"**पाँच पर-सम्पत्** इस प्रकार हैं–1. लोक में **बुद्ध** का उत्पन्न होना, 2. **सद्धर्म** की देशना करना, 3. उपदिष्ट धर्म का अक्षुण्ण रहना, 4. उस धर्म का अनुसरण करना और 5. दूसरों के प्रति सहृदयता।"[5]

चार अनभिनिवेश

सद्धर्म जो सभी सुखों का मूल है, उसे **तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध** ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है–

---

1. **वही**, पृ०–13
2. **वही**, पृ०–13
3. **वही**, पृ०–14
4. **वही**, पृ०–14
5. **वही**, पृ०–14

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥[1]

सभी तरह के पापों को नहीं करना, कुशल कर्मों का संचय करना, अपने चित्त का पूरी तरह से शमन करना–यही त्रैकालिक **बुद्धों** की शिक्षा है।

इन्हीं तीन बातों में समस्त बुद्धों की शिक्षा निहित है। **शील, समाधि** और **प्रज्ञा** का सांगोपांग संचय उपर्युक्त तीन बातों में समाहित हो जाती है। तीन प्रकार के पुरुषों का मार्ग जिनका ऊपर संकेत किया गया है, वे सभी **शील** के पालन से ही अपना अभ्यास प्रारम्भ करते हैं। **शील** के सम्यक् पालन के लिए ही **समाधि** की आवश्यकता होती है और समाधि की परिपूर्णता भी **प्रज्ञा** में होती है।

अभिनिवेश तो **आसक्ति** अथवा **राग** का ही पर्याय है। **बौद्ध** शब्दावली में जिसे **त्रिविष** कहा गया है, उसमें भी प्रथम **राग** ही आता है। अर्थात् **राग, द्वेष** और **मोह** ही समस्त क्लेशों के जनक हैं। क्लेश है तो दुःख होता है, क्योंकि **भगवान् तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध** ने दुःख का मूल कारण **समुदय** अथवा क्लेश को ही कहा है। समुदय सत्य के कारण ही **दुःख** सत्य फलित होता है। अतः **अनभिनिवेश** का अर्थ **अभिनिवेश से रहित होना** है। दूसरे शब्दों में चार प्रकार के राग हैं, जो हमें **सद्धर्म** के उपर्युक्त कहे गये फलों को प्राप्त कराने में बाधा पहुँचाते हैं। उन्हीं चार प्रकार के अभिनिवेशों या चार प्रकार के रागों के प्रतिपक्ष के रूप में चार अनभिनिवेशों का वर्णन किया गया है। इन चार प्रकार के अनभिनिवेशों को **साक्या-पा** के महान् गुरुओं ने बहुत ही आकर्षक और सम्यक् तरीके से व्याख्यायित किया है। वे **चार अनभिनिवेश (शेन्-पा शी-डल्)** इस प्रकार हैं–

1. यदि (आप) इस जन्म के प्रति अभिनिवेश करते हैं, तब धार्मिक नहीं हैं। **(छे दी-ला शेन्-ना छोस्-पा मिन्)**
2. यदि सांसारिकता के प्रति अभिनिवेश करते हैं, तब वैराग्य नहीं होता है। **(खोर्-वा-ला शेन्-ना डेस्-जुङ् मिन्)**
3. स्वार्थ में अभिनिवेश हो, तब बोधिचित्त नहीं होता **(दग्-दोन्-ला शेन्-ना जङ्-सेम्स मिन्)**
4. ग्राह अर्थात् आसक्ति होने पर दृष्टि (सम्यक्) नहीं होती। **(ज़िन्-पा जुङ्-ना त-वा मिन्)**

---

1. **धम्मपद,** 14.5

भगवान् ने कहा है कि समस्त दुःखों का मूल **राग** अर्थात् **अभिनिवेश** ही है। अतः उपर्युक्त चार अनभिनिवेशों के माध्यम से बौद्धों के समस्त मार्ग व्यवस्थाओं को प्रतिपादित किया गया है। इनमें तीनों **मार्गक्रम** संकलित किये गये हैं और साथ ही अन्तिम पद के द्वारा सम्यक्दृष्टि के सही स्वरूप को भी प्रतिपादित किया गया है, जिसके द्वारा **साधक** शुद्ध रूप से मार्ग-गमन करता है। **सम्यक्दृष्टि** के विना कोई **बौद्ध** अपने मार्ग पर सही रूप से नहीं चल सकता। इसीलिए **आर्य-अष्टांगिक-मार्ग** में भी इसे प्रथम स्थान पर रखा गया है।

भोटदेशीय आचार्यों के **मार्गक्रम** का मूल **अतीश** द्वारा रचित **बोधिपथप्रदीप** ही है। इसी के आधार पर **तिब्बत** में **मार्गक्रम** की व्याख्यायें लिखी गई हैं। **गम्पोपा** ने भी अपने **मार्गक्रम** सम्बन्धित ग्रन्थ में आज तक हम लोगों द्वारा बुद्धत्व प्राप्त नहीं कर पाने के चार कारण गिनाये हैं, यथा–"1. इस जीवन के विषयों के प्रति आसक्ति, 2. भवसुख के प्रति आसक्ति, 3. शमसुख के प्रति आसक्ति और 4. बुद्धत्व की निष्पत्ति से संबद्ध उपाय से अनभिज्ञता।"[1]

इन चार प्रकार के दोषों से मुक्त होने के लिए **गम्पोपा सोद्-नम्स रिन्-छेन्** ने इनके प्रतिपक्ष के रूप में क्रमशः 1. अनित्यता की भावना, 2. कर्मफल के साथ सांसारिक दोषों की भावना, 3. मैत्री एवं करुणा की भावना तथा 4. **बोधिचित्त** की भावना–इन चार प्रकार की भावनाओं का वर्णन किया है।[2]

यदि कोई व्यक्ति केवल इसी जन्म के प्रति आसक्त रहता है, तब उसे हम वास्तविक रूप से **धार्मिक** नहीं कह सकते। ऐसा तो समस्त निरय प्राणियों का भी स्वभाव होता है। यदि किसी में पर-जन्म के प्रति संशय है, तब वह कर्मफल सिद्धान्त को भी पूरी तरह से व्यवहार में नहीं ला सकता। बौद्धों की मार्ग-व्यवस्था सम्पूर्ण बुद्धत्व **(सर्वज्ञ)** के लिए है। यह तभी सम्भव होगा, जब कोई अन्य जन्म को भी माने।

शील का सम्पूर्ण रूप से पालन तभी सम्भव होता है, जब आप इस जन्म के प्रति आसक्ति का त्याग करते हैं। आप यह चिन्तन करते हैं कि यदि मैं इस प्रकार का **अकुशल कर्म** करता हूँ, तब यहाँ कोई फल नहीं मिलने पर भी अन्य जन्मों में तो इसका फल भुगतना ही पड़ेगा। तभी कोई व्यक्ति धार्मिकता के प्रथम स्तर पर पहुँच पाता है। इसीलिए यह कहा गया है कि यदि आप केवल इसी जन्म के प्रति **अभिनिवेश** करते हैं, तब सही रूप से धार्मिक

---

1. **सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालंकार,** पृ०–33
2. **वही,** पृ०–34

नहीं हो सकते। यदि सही रूप से **धार्मिक** नहीं हैं, तब वे दशाकुशलकर्मों[1] का त्याग आदि धार्मिक नियमों का पालन सम्यक् रूप से नहीं कर पाते हैं।

इसका फल यह होगा कि मृत्यु के बाद जो अन्य जन्म होगा उसमें **अधमपुरुष** का जो फल है, अर्थात् **अभ्युदय** रूपी **देव** एवं **मानव** जीवन है उससे आप दूर होंगे। अतः उपर्युक्त प्रथम पद **अधमपुरुष** की मार्ग-व्यवस्था है, जिससे व्यक्ति इस पहली प्रकार के पुरुष के फल को आसानी से प्राप्त कर सकता है। **अधमपुरुष** के लक्षण को **बोधिपथप्रदीप** में इस प्रकार कहा गया है–

यस्य केनाप्युपायेन संसारसुखमात्रकम्।
स्वस्यैवार्थाय चाभीष्टं स ज्ञेयः पुरुषोऽधमः ॥[2]

जो व्यक्ति दशाकुशलों का त्याग आदि किन्हीं उपायों के द्वारा मृत्यु पश्चात् सांसारिक **देव-मनुष्य** के सुख की अभिलाषा करता है और उसके प्रति उपर्युक्त कहे गये **शील** के पालन में प्रयत्नशील रहता है, उसे **अधमपुरुष** जानना चाहिए।

हमारे चित्त की दो अवस्थाएँ हैं, यथा 1. सांसारिक और 2. नैर्वाणिक। इसी बात को **गम्पोपा** ने बहुत ही सुन्दर तरीके से कहा है, यथा–"सामान्यतया समस्त धर्म इन दो वर्गों में संगृहीत होते हैं–**संसार** और **निर्वाण**। इन दोनों के **स्वभाव, आकार** और **लक्षण** इस प्रकार हैं। यह जो संसार है, वह स्वभाव से **शून्य** है, **भ्रान्ति** उसका **आकार** है और **लक्षण दुःखों का उदय** है। यह जो निर्वाण है, वह स्वभाव से शून्य है, समस्त भ्रान्तियों की परिनिवृत्ति उसका आकार है और लक्षण समस्त **दुःखों** से **मुक्ति** है।"[3]

जैसे हम जानते हैं कि अभ्युदय सांसारिक पद है और इसके अन्तर्गत 1. **देव** एवं 2. **मनुष्य** दो योनि आती हैं। इसी तरह **निःश्रेयस्** के अन्तर्गत भी दो वर्ग हैं, यथा–1. **मोक्ष** एवं 2. **सर्वज्ञता** । चार अनभिनिवेशों में द्वितीय पद अर्थात् **यदि सांसारिकता के प्रति अभिनिवेश करते हैं, तब वैराग्य नहीं होता। (खोर्-वा-ला शेन्-ना डेस्-जुङ् मिन्)**– इसके द्वारा **मध्यमपुरुष** के मोक्ष मार्ग को प्रदर्शित किया गया है।

---

1. काय के तीन पाप हैं, यथा–1. प्राणिहत्या, 2. चोरी और 3. काममिथ्याचार। वाक् के चार पाप हैं, जैसे–1. झूठ, 2. चुगली, 3. कठोर वचन और 4. बकवास अथवा अनर्थ प्रलाप । चित्त के तीन पाप हैं, यथा–1. अभिध्या (राग), 2. व्यापाद (द्वेष) और 3. मिथ्या-दृष्टि ।
2. **बोधिपथप्रदीप,** श्लोक सं०–3
3. **सद्धर्मचिन्तामणिमक्षरत्नालंकार,** पृ०–1

तथागत द्वारा उपदिष्ट मार्ग का प्रथम प्रकार का अनुयायी अर्थात् वह व्यक्ति कम से कम मृत्यु के पश्चात् **नरक** आदि तीन दुर्गतियों में उत्पन्न नहीं होना चाहता। वह **अधमपुरुष-मार्ग** के द्वारा कम से कम अपनी मृत्यु के बाद **देव** अथवा **मनुष्य** योनि को तो प्राप्त करना ही चाहता है। परन्तु **मध्यमपुरुष** रूपी वह साधक इस विचार से भी ऊपर उठता है कि संसार सुखमय है। उसके लिए यह संसार चाहे वह **मनुष्य** योनि हो या **देव**लोक दोनों में पूर्णतया दुःख ही व्याप्त है। वह तो उससे भी उँचे सुख, **मोक्ष** अथवा **निर्वाण** को प्राप्त करना चाहता है।

इसके लिए यह आवश्यक है कि वह **साधक** इस सांसारिकता के प्रति **अभिनिवेश** नहीं करे। यदि इस संसार के प्रति थोड़ी-सी भी **आसक्ति** रह जाती है, तब वह **मोक्ष** के प्रति सजग नहीं हो सकता। वैराग्य तो विराग का ही भाव है। जिसमें इस संसार के प्रति विराग जागे, उसे ही सही **वैराग्य** कहते हैं। अतः उस दूसरे पद के द्वारा **मध्यपुरुष** के **मार्ग** को प्रतिपादित किया गया है। **बोधिपथप्रदीप** में कहा गया है–

विरतः पापकर्मभ्यो भवसौख्यात् पराङ्मुखः।
आत्मोपशममात्रार्थी स उक्तो मध्यमः पुमान्॥[1]

जो व्यक्ति इस भवसुख अर्थात् सांसारिक सुख से विमुख होता है और पापकर्मों से अपने को विरत रखता है। साथ ही कोई मात्र अपने **शम**सुख (निर्वाण) के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसे **मध्यमपुरुष** समझना चाहिए।

तथागत सम्यक् सम्बुद्ध के तीन यानों में सर्वश्रेष्ठ तो **बोधिसत्त्वयान** ही है। वह तो समस्त सत्त्वों के हित के लिए संसार पर्यन्त उन दुःखी सत्त्वों के हितों को साधते हुए यहीं इसी **भव** अर्थात् **संसार** में रहना चाहता है। **बोधिचर्यावतार** में कहा गया है–

आकाशस्य स्थितिर्यावद् यावच्च जगतः स्थितिः।
तावन्मम स्थितिर्भूयाज्जगद्दुःखानि निघ्नतः॥[2]

जब तक **आकाश** स्थित है और जब तक यह दुःखी संसार अस्तित्व में बना रहता है, तब तक मैं इस संसार में बना रहूँ और उन समस्त दुःखी प्राणियों के दुःखों का निवारण करता रहूँ।

ऐसा विचार तो एक महान् **वीर** में ही सम्भव होता है। इसलिए एक कम उत्साह वाला व्यक्ति **बोधिसत्त्व** कदापि नहीं बन सकता। **बोधिसत्त्व** का अर्थ ही **महावीर** होना है, जो स्वार्थ को त्याग कर समस्त सत्त्वों के कल्याण के लिए अहोरात्र लगा रहे।

---

1. **बोधिपथप्रदीप,** श्लोकसं०–4
2. **बोधिचर्यावतार,** 10.55

इसीलिए यह तीसरा पद–**स्वार्थ में अभिनिवेश हो, तब बोधिचित्त नहीं होता। (दग्-दोन्-ला शेन्-ना जङ्-सेम्स मिन्)** कहा गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि **बोधिचित्त** स्वयं में ही समस्त अभिनिवेशों से रहित अवस्था है। वह तो हमारी चित्त की निर्मलतम अवस्था है, जिससे समस्त सत्त्वों का केवल कल्याण ही होता रहता है। अतः यह बहुत ही स्पष्ट है कि यदि हम स्वार्थी होकर कार्य करते हैं, तब कदापि **बोधिचित्त** से सम्बन्धित नहीं होते। स्वार्थ **बोधिचित्त** नहीं है और ठीक इसके विपरीत **अभिनिवेश** रहित परार्थ ही बोधिचित्त कहलाता है, जिसके बल पर सत्त्व अर्थात् प्राणी अन्तिम फल सर्वज्ञता की प्राप्ति करता है। यह चर्या ही उत्तमपुरुषमार्ग कहलाती है और इसके लक्षण को बोधिपथप्रदीप में इस प्रकार कहा है–

स्वसन्ततेर्यथा दुःखं दुःखं सर्वं हि सर्वथा।
अन्यस्य हातुमिच्छेद् य उत्तमः पुरुषस्तु सः ॥[1]

अपनी चित्त की सन्तति में जो भी दुःख उत्पन्न होते हैं, उनका सम्यक् अनुभव करते हुए जैसे मैं स्वयं उस दुःख को नहीं चाहता वैसे ही दूसरे भी इसी प्रकार दुःखों को नहीं चाहते हैं, अतः जैसे मैं स्वयं के समस्त दुःखों को हटाने की चेष्टा करता हूँ वैसे ही मैं समस्त प्राणियों के दुःखों का भी सम्यक् रूप से निवारण करना चाहूँगा–इस प्रकार की इच्छा रखने वाले व्यक्ति ही **उत्तमपुरुष (बोधिसत्त्व)** कहलाते हैं और जिन उपायों की भावना से यह अवस्था आती है, वह **उत्तमपुरुषमार्ग** के नाम से जाना जाता है।

मार्गक्रम के अवसर पर 1. **दृष्टि,** 2. **चर्या** एवं 3. **भावना** का विशेष महत्त्व है। इसी को ध्यान में रखते हुए यहाँ चौथा पद कहा गया है–**ग्राह अर्थात् आसक्ति होने पर दृष्टि (सम्यक्) नहीं होती। (ज़िन्-पा जुङ्-ना त-वा मिन्।)**

वास्तव में 1. **राग,** 2. **द्वेष** और 3. **मोह** से रहित चित्त ही **सम्यक्दृष्टि** का आधार है। एक मार्गीय पुद्गल इसको स्पष्ट रूप से पहचानता है और अपनी **दृष्टि** को स्वच्छ रखता है। **दृष्टि** स्वच्छ होगी तो चर्या सही होगी और चर्या सही होगी तो **भावना** सम्यक् रूप से हो पायेगी। अतः **दृष्टि** के अवसर पर भी आसक्ति के त्याग की बात कही गयी है। **गम्पोपा** ने अपनी **चतुर्धर्म** नामक ग्रन्थ में 1. **दृष्टि,** 2. **चर्या** और 3. **भावना** को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

---

1. **बोधिपथप्रदीप,** श्लोक सं०–5

"समस्त यानों को विषय बनाने वाले
तीन पुरुषों के मार्ग का यह क्रम
त्रिकाल-आर्यों का शास्त्र-मार्ग है
विस्तर है चतुर्धर्मों द्वारा
वे प्रत्येक भी **दृष्टि, भावना, चर्या** (का)
अभ्यास करें तीनों के द्वारा ॥
कर्मफल-**भावना**, सम्यक्-**दृष्टि,**
कुशल-पाप प्रवेश-त्याग-चर्या है
फल अभ्युदय **सुर** और **नर** दो
संग्रह है **अधम-पुरुष** का ॥"
अनात्म**दृष्टि**, आदीनव-**भावना**,
निर्याण त्रिशिक्षा **चर्या** है,
फल श्रावक-प्रत्येक-बोधि दो
संग्रह है **मध्यम-पुरुष** का ॥
सत्यद्वय**दृष्टि**, युगल**भावना**,
दशपारमिता **चर्या** है
फल अप्रतिष्ठित निर्वाण
संग्रह है **उत्तम-पुरुष** का ॥"[1]

इस प्रकार उपर्युक्त चार पाद के अन्तर्गत **मार्गक्रम** की सम्पूर्ण व्यवस्था समायी हुई है और इसके अभ्यास से साधक पात्रता के अनुसार अपने-अपने फलों को प्राप्त कर सकता है। यही बुद्धों की शिक्षा है और यही समस्त सत्त्वों का अन्तिम उद्देश्य भी है। अतः एक पुरुष जो साधक है, वास्तविक रूप से अपनी-अपनी क्रम के फलों को प्राप्त करना चाहता है, तब उसे उक्त मार्ग में अहोरात्र तत्पर रहना चाहिए। इसी में प्राणियों का सम्यक् कल्याण समाया हुआ है।

अभिषेक

बौद्धों में तीन यान बहुत प्रसिद्ध हैं, यथा–1. श्रावकयान, 2. प्रत्येकबुद्धयान और 3. महायान। **हेवज्रटीका** में कहा गया है–"श्रावक, प्रत्येकबुद्ध और महायान–तीन हैं। बौद्धों में

---

1. **पद्-कर् सुङ्-बुम्**, ग्रन्थ सं०–79, **पदमाकरपो-विरचिता पूर्वयोग-टिप्पणी** की **भूमिका** में उद्धृत, पृ०–148

चार (प्रकार के यान) एवं पाँच (प्रकार के सिद्धान्तों को मानना) **मुनि** (**बुद्ध** का) मत नहीं है।" महायान भी हेतुभूत 1**. पारमितायान** और फलभूत 2. **मन्त्रयान** के भेद से दो हो जाते हैं। इन दो यानों में भी **मन्त्रयान** श्रेष्ठ है। **मन्त्रयान** के भी पुनः 1. क्रियातन्त्र, 2. चर्यातन्त्र, 3. योगतन्त्र और 4. अनुत्तरयोगतन्त्र चार भेद हो जाते हैं। ये सभी उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं, यथा **बोधिचर्यावतार** में कहा गया है–

बाध्यन्ते धीविशेषेण योगिनोऽप्युत्तरोत्तरैः।
दृष्टान्तेनोभयेष्टेन कार्यार्थमविचारतः॥[1]

योगी का अर्थ सत्य का अन्वेषण करने वाला है। सत्य के साथ जो हमें जोड़ता है वही **योग** है। वही सत्य जिसमें उदित हुआ है, वह सही **योगी** है। इन योगियों के भी नाना क्रम हो सकते हैं। इसलिए यहाँ कहा गया है कि ऊपर-ऊपर के योगियों के चित्त की प्रकृति से नीचे-नीचे के योगियों का चित्त बाधित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि **प्रथम भूमि (प्रमुदिता)** प्राप्त बोधिसत्त्व से **दूसरी भूमि (विमला)** प्राप्त **बोधिसत्त्व** को अधिक प्रामाणिक मानना होता है।

जैसे कि **थेरवाद** के क्रम में **प्रातिमोक्षसंवर** का सम्यक् अभ्यास किया जाता है वैसे ही **महायान** के क्रम में **बोधिसत्त्वसंवर** का विशेष अभ्यास किया जाता है। तत्पश्चात् **तन्त्रयान** तक आते-आते हमें **तन्त्रसंवर** के विशेष अभ्यास के लिए जिस विशेष अवस्था को प्राप्त करना होता है, वह **अभिषेक** कहलाता है। इसको प्राप्त किये बिना यदि कोई **तन्त्र** का अभ्यास करता है, तब उसे बहुत ज्यादा लाभ प्राप्त नहीं होता।

तन्त्रसंवर के अभ्यास हेतु हमें किसी विशेष तान्त्रिक देव के विध्यनुसार उससे सम्बन्धित **अभिषेक** को प्राप्त करना होता है। कहा जाता है कि तन्त्र की सिद्धि **अभिषेक** के बिना नहीं होती। यह वैसे ही है जैसे **पतवार** के विना **नाविक** अपनी **नाव** को नदी पार नहीं करा सकता। अथवा बालू को निचोड़ने से उससे **तेल** प्राप्त नहीं होता। **तेल** को प्राप्त करने के लिए उसी के प्रकृति का हेतु रूपी तिल आदि की आवश्यकता निश्चित रूप से होती ही है।

वज्रयान के प्रति श्रद्धावान् लोग नाना देवों से सम्बन्धित अभिषेकों को अपने **गुरु** से प्राप्त करते ही रहते हैं। इन अभिषेकों में भी जो **अभिषेक** सामान्य जनता प्राप्त करना चाहती

---

1. **बोधिचर्यावतार,** 9.4

है, वह आयु-अभिषेक ही है। इस अभिषेक की प्राप्ति के द्वारा निश्चित तौर से हमारी **आयु** में वृद्धि होती है, इसमे कोई सन्देह नहीं है।

यह **आयु-अभिषेक** विभिन्न देवों की अपनी **आयु-सिद्धि-विधि** द्वारा परम्परागत **गुरु** प्रदान करते हैं। इसके विषय में मुख्य रूप से हमें **तन्त्रयान** व्यवस्था में कथित **क्रमद्वय (रिम्-ञीस्)** साधना को करना होता है। यह साधना आपको **गुरु** द्वारा **अभिषेक** प्रदान करते समय भी सिखाया जाता है।

अतः यदि **गुरु** के सिखाये अनुसार हम तत्सम्बन्धित विषय का अभ्यास करते हैं, तब आपके क्षमतानुसार उसके द्वारा जो लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं, उसकी प्राप्ति होती ही है। जैसे कि यह सर्वविदित है, धर्म के सम्पादन हेतु हमारा जीवित रहना अत्यन्त आवश्यक है, अतः सम्यक् रूप से धर्माचरण करते हुए हमारी आयु की बढ़ोत्तरी होती है तो इससे बडा सौभाग्य और कुछ हो नहीं सकता। इसलिए एक **महायानी साधक** स्व-पर की आयु-वृद्धि हेतु **आयु-अभिषेक** को प्राप्त करता है।

पर्यावरण

पर्यावरण की जानकारी आज के युग में समस्त लोग जो इस भूलोक पर रहते हैं, उनके लिए अत्यावश्यक हो गया है। संसार में रहने वाला कोई भी व्यक्ति प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचा नहीं है और इसके विपरीत यदि हमारा पर्यावरण शुद्ध होता है, तब उसका लाभ समस्त विश्व के लोगों को सामूहिक रूप से मिलता रहता है। अतः पर्यावरण के प्रति जागरूकता विश्व स्तर पर होनी चाहिए, यह आज किसी से छिपी नहीं है।

समस्त ब्रह्माण्ड में जो बाह्य पदार्थ हैं उनके बनने और बिगड़ने में प्रमुख रूप से पाँच धातुएँ सम्मिलित होती हैं, यथा–1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु और 5. आकाश। सारे भौतिक पदार्थ प्रत्येक क्षण इन्हीं पाँच धातुओं से बनती और बिगड़ती रहती है।

अतः समस्त भौतिक वस्तुओं की शुद्धता अथवा स्वच्छता और प्रदूषण का खेल भी इन्हीं पाँचों पर निर्भर करता है।

ये पाँचों तत्त्व शुद्ध हों तो आपको शुद्ध अन्न की प्राप्ति हो सकती है। पेड़-पौधे सही रूप से अपने आकार-प्रकार को प्राप्त कर सकते हैं। इनकी शुद्धता से नाना प्रकार के रोगों में कमी आ सकती है। अच्छी बारिश हो सकती है। बाढ़ों में कमी आ सकती है। मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है। आपका मन स्वच्छ हो सकता है और आप स्वच्छ कार्यों के प्रति प्रयत्नशील हो सकते हैं। सकारात्मक विचारों में बढ़ोत्तरी हो सकती है और आप सामाजिक सरोकारों को वास्तविक रूप से स्वीकार कर सकते हैं।

साथ ही साथ इनकी अशुद्धि होने पर पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ सकता है। दूषित अन्न प्राप्त होंगे जो हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ सकते हैं। जल प्रदूषित होंगे तो बीमारियों का ताँता लग सकता है, क्योंकि कहा जाता है कि साठ प्रतिशत बीमारी दूषित जल के साथ ही जुड़ी हुई है। वातावरण प्रदूषित होगा तो हमारे लिए जिस स्वच्छ वायु की आवश्यकता होगी वह प्राप्त नहीं हो पायेगी। वायु प्रदूषण से सांस से सम्बन्धित अनेक बीमारियाँ हो सकती हैं। विशेष रूप से जो दमा के मरीज़ हैं उनको तो विशेष तकलीफ होती ही है।

इस प्रकार नाना प्रकार के नकारात्मक परिस्थतियों में वृद्धि होगी। विश्व समाज दूषित हो जायेगा। लोग दूषित विचारों से युक्त होंगे और चिड़चिड़ापन बढ़ेगा। हमारी वास्तविक शान्ति में बाधा उपस्थित होगी। सम्पूर्ण समाज दूषित वातावरण के कारण स्वयं भी दूषित हो जायेगा, जो विश्व समाज के लिए सही नहीं है।

स्वस्थ समाज के लिए स्वच्छ वातावरण की अत्यन्त आवश्यकता होती है। भारतीय समाज में कहा जाता है कि **जैसा अन्न वैसा मन**। वह स्वच्छ अन्न तभी प्राप्त होगा जब हम वातावरण को स्वच्छ रखने की प्रतिज्ञा करें और साथ ही उसे निभायें भी। अतः मन को पूर्ण रूप से स्वच्छ रखते हुए इस सुदुर्लभ मानव काय का सदुपयोग करते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य को उपर्युक्त उपाय द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

"मा कश्चिद् दुःखितः सत्त्वो मा पापी मा च रोगितः।
मा हीनः परिभूतो वा मा भूत् कश्चिच्च दुर्मनाः॥

कोई प्राणी न दुःखी हों, न पापी हों, न रोगी हों, न हीन हों, न तिरस्कृत हों और न दुष्टचित्त हों।

पाठस्वाध्यायकलिला विहाराः सन्तु सुस्थिताः ।
नित्यं स्यात् सङ्घसामग्री सङ्घकार्यं च सिध्यतु॥

विहार पाठ और स्वाध्याय से व्याप्त, शोभानावस्था में रहें। संघभेद कभी न हो और संघ कार्य सिद्ध हो।

विवेकलाभिनः सन्तु शिक्षाकामाश्च भिक्षवः।
कर्मण्यचित्ता ध्यायन्तु सर्वविक्षेपवर्जिताः॥

भिक्षु विवेकलाभी और शिक्षार्थी हों, सब विक्षेपों से रहित हों, कर्मण्य चित्त होकर ध्यान करें।

जगद्दुःखैकभैषज्यं सर्वसम्पत्सुखाकरम् ।
लाभसत्कारसहितं चिरं तिष्ठतु शासनम् ।।

जगत् के दुःखों का एकमात्र औषध, सब संपत्तियों और सुखों का आकर, (बुद्ध का) शासन लाभ और सत्कार के साथ चिरकाल तक ठहरे ।''[1]

।। भवतु सर्वमङ्गलम् ।।

प्रधान संपादक (कोश-विभाग)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415698420

1. **बोधिचर्यावतार**, 10.41-43, 57, हिन्दी-अनुवाद–डॉ० शान्तिभिक्षु शास्त्री

भाषा-चिंतन की अन्तर्वाही चेतना

—डॉ. उदय प्रताप सिंह—

भारत विविधताओं की भूमि है। यहाँ अनेकता में एकता है। कुछ विचारक एक में अनेक की स्थापना करते हैं **'एकोऽहम् बहुस्यामः'**। दोनों का निहितार्थ एक ही है। यहाँ भिन्न-भिन्न बनावट और बहुभाषा-भाषी लोग सहभाव से निवास करते हैं। नदियाँ अनेक हैं- पर सभी संगमित होती हैं समुद्र में। भेष-भूषा, खान-पान, भाषा-बोली, पूजा-पद्धति साहित्य और संस्कृतियों के भिन्न-भिन्न रूप हैं, पर सबका सुर अभिन्न है। सबकी आत्मा परमात्मा का अंश है। एक महाप्रकाश से सभी प्रकाशित हैं- **'एक नूर ते सब उत्पन्ना', 'जगत प्रकास प्रकासक रामू'**। यहाँ के लोग सदियों से बाहरी आक्रमण का प्रतिकार मिलकर करते रहे हैं। अद्भुत संयोग है कि आदि शंकराचार्य दक्षिण से उत्तर आते हैं और भक्ति भी दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती है, पर विचित्र है कि अगस्त्य आदि आचार्य उत्तर से दक्षिण जाते हैं। उपास्य उत्तर के, उपासक दक्षिण के हैं। भाषा में भिन्नता हो सकती है, उच्चारण-भेद हो सकता है; पर भारतबोध में अंतर नहीं है। संस्कृति का संवहन भाषा करती है। अतः भाषाओं की अन्तर्चेतना (संस्कृति) एक है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में इसका परीक्षण हो चुका है।

भाषा, मनुष्य की भावाभिव्यक्ति के लिए ईश्वरीय वरदान है। वह सम्प्रेषण का साधन भी है और अर्थ ग्रहण का महत्त्वपूर्ण माध्यम भी। वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती हैं। वाक्शक्ति ही भाषा-चिंतन एवं सांस्कृतिक परम्परा को संरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण अधिष्ठान है। कहना है कि संस्कृति-सभ्यता और ज्ञान-परम्परा को संरक्षित करने में भाषा की अहम भूमिका होती है। भारतीय वाङ्मय को समग्रता में देखा जाय तो सबसे बड़ी चिंता ज्ञान के सुरक्षा की है- **'श्रुतं मे गोपाय'**। ज्ञान को पवित्रतम स्वीकार करते हुए चिंतकों ने कहा है कि ज्ञान द्वारा ही आत्मा का संस्कार-संभव है- **'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'**। ज्ञान की सुरक्षा और उसका प्रसार भाषा के अधीन होता है। अतः भारत में भाषा सम्बंधी चिंतन की सुदीर्घ परम्परा है। शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त आदि का विकास भाषा सम्बंधी चिंतन से ही हुआ। भाषा अभिव्यक्ति का अनिवार्य साधन है। भाषा का अर्थ होता है बोलना, शब्द सहित उच्चारण, भावों को व्यक्त करना, श्रोता के हृदय में भाव जाग्रत कर देना इत्यादि। सभ्यता के विकास और संस्कृति के प्रसार के साथ भाषा के अर्थ विस्तार की प्रक्रिया भी विकसित होती रहती

है। उदाहरण के लिए वैदिक और लौकिक संस्कृत को लिया जा सकता है। दोनों के व्याकरण, शब्द-सम्पदा तथा अर्थबोध में पर्याप्त अंतर है, पर लौकिक संस्कृत को वैदिक संस्कृत का उत्तरवर्ती विकास ही कहते हैं। भाषा की लम्बी जीवन यात्रा में कुछ शब्दों की साँस बीच में ही टूट जाती है, कुछ का स्वरूप व अर्थ बदल जाता है। कुछ भाषाओं में शब्दों की संख्या अनपेक्षित रूप से बढ़ जाती है। हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाएँ इसके उदाहरण हैं। प्रतिवर्ष शब्दकोशों में जुड़ने वाले शब्द इसके प्रमाण हैं। आवागमन की अधिकता और संचार माध्यमों के प्रचार-प्रसार से भारतीय भाषाओं के शब्द एक-दूसरे में जाने-अनजाने सम्मिलित होते रहते हैं। चंद्रयान यात्रा-3 में 'चंद्रयान'; 'शिवशक्ति', 'आदित्य' जैसे हिन्दी के शब्द जुड़े हैं। इनकी अन्तर्वाही चेतना सभी भारतीय भाषाओं में ध्वनित होने लगी है। सभी भाषा-भाषी लोग इन शब्दों का वही अर्थबोध कर रहे हैं जो हिन्दी भाषी लोग।

भाषा शब्द समूहों की वाक्यावली मात्र नहीं, सांस्कृतिक इतिहास का जीवंत अभिलेख होती है। भाषा वैज्ञानिक, ध्वनि विज्ञान द्वारा मानव के जातीय इतिहास तक का लेखा-जोखा रखते हैं। आर्य, भारत से बाहर गये इस तथ्य का प्रमाण रामबिलास शर्मा ने ध्वनि संकेतों के आधार पर प्रस्तुत किया है। ध्वनि संकेत के सिद्धांत का मूल आधार वैदिक संस्कृत है। भारत में लगभग दो हजार भाषाएँ बोली जाती हैं। उनमें कई विलुप्त होने की स्थिति तक पहुँच चुकी हैं। इस चिंता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने नयी शिक्षानीति में मातृभाषा को महत्त्व दिया है तथा मातृभाषा में शिक्षा प्रदान (प्राप्त) करने का प्रावधान किया है। स्वभाषा से स्वत्त्वबोध और स्वत्वबोध से गौरवबोध की अनुभूति होती है। गौरवबोध से देश की अस्मिता सुरक्षित रहती है। मनुष्य-समाज के विकास में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भावाभिव्यक्ति का प्रमुख साधन होने के कारण भाषा परस्पर मानव समूहों को निकट लाने में महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाती है।

भाषा-चिंतन द्वारा ही अस्मिता बोध और संस्कृति की अनुभूति होती है। अनेक बाधाओं के बाद भी हमारी भाषायी संस्कृति की मजबूती ने हमें एक रखा है। महर्षि पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' ने पहली बार भाषा-चिंतन की वैज्ञानिक कसौटी तैयार किया। भाषा के विषय में सोचने-समझने का यह महत्त्वपूर्ण कदम था। इसके उपरांत तो भाषा-चिंतन के कई विमर्श हुए। 'प्रातिशाख्य', 'निरुक्त', 'छंद-शास्त्र', 'शब्द-प्रमाण', 'शब्दबोध' तथा 'प्रास्थानत्रयी' द्वारा भाषा का चिंतन भिन्न-भिन्न युगों में होता रहा है। जैन-बौद्ध ग्रंथों, तंत्रशास्त्र के भाषा-विमर्शों, भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय', कात्यायन का 'भाषातत्व विवेक',

नागेश भट्ट का 'भाषाचिंतन' इस दिशा में किये गये सार्थक प्रयास हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रस, औचित्य व रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों का भाषा सम्बंधी चिंतन संस्कृति के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, देवेन्द्रनाथ शर्मा, विद्यानिवास मिश्र इत्यादि ने भाषा-अध्ययन की परम्परा को विमर्शात्मक पद्धति से आगे बढ़ाने का प्रयास किया है तथा भाषा वैज्ञानिकों ने भाषाचिंतन की प्रक्रिया को तार्किक और गंभीर बनाया। फिर भी पूर्व नौकरशाह अशोक वाजपेयी को लगता है कि भारत में भाषाओं को लेकर न चिंतन हुआ न उसका विकास ही। इस संदर्भ में कहना है कि प्राचीन से आधुनिक विद्वानों तक ने भाषा के उद्भव, सम्वर्द्धन, समृद्धि, बदलती प्रकृति, शब्द-सम्पदा, शब्दशक्ति और वाक्य आदि पर गहन विमर्श किया है। अतः भाषा-चिंतन की प्रक्रिया सम्प्रेषणीयता और ग्रहणीयता से जुड़ती गयी। पर्वतराज हिमालय से निकलने वाली धारायें जैसे कई स्थलों पर महानद का रूप पकड़ लेती हैं, कहीं अन्तर्प्रवाह बन लोकजीवन को अभिसिक्त करती हैं- उसी तरह भाषाएँ और बोलियाँ भी संस्कृत रूपी महानद से, रसग्रहण कर आगे बढ़ती हैं। **'दो कोस पर पानी बदलै चार कोस पर बानी'** वाली कहावत अनायास ही नहीं कही गयी है । कहना है कि भाषा का चिंतन हजारों वर्ष से चल रहा है।

हिन्दी, भारत की प्रमुख भाषा है। बहुसंख्यक लोग इसका प्रयोग करते हैं। हिन्दी और हिन्दीतर प्रांतों में यह कामकाज की भाषा बन चुकी है। स्वतंत्रता आंदोलन के साथ हिन्दी भाषा का स्वरूप भी राष्ट्रव्यापी बनता गया। कन्याकुमारी से कश्मीर और अटक से कटक तक स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व हिन्दी भाषा ने किया है। **'तुम मुझे खून दो मैं तुझे आजादी दूँगा'**- सुभाषचंद्र बोस की यह घोषणा हिन्दी की व्यापकता और लोकप्रियता को इंगित करती है। उनके कथन में हिन्दी भाषा की दीर्घकालीन अन्तर्वाही चेतना सक्रिय दिखती है। हिन्दी की सर्वसमावेशी क्षमता से अहिंदी भाषी सुभाष चंद्र बोस तक परिचित थे। उनके द्वारा गठित **'आजाद हिन्द फौज'** में हिन्दी भाषी सैनिकों की संख्या सर्वाधिक थी। हिन्दी का गीत **'झंडा ऊँचा रहे हमारा, विजयी विश्व तिरंगा प्यारा'** सभी भाषा-भाषियों को समान रूप से प्रभावित करता रहा था। पंजाबी, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलगु, मलयालम, बंगला, उड़िया, असमी, सिन्धी इत्यादि भाषा-भाषी आंदोलनकारियों का यह जागरण गीत था। हिन्दी की स्वीकार्यता, लोकवाही रूप और सम्पूर्ण देश को एकजुट करने की क्षमता ने इसे राष्ट्रभाषा का प्रत्यय प्रदान किया। अनेक हिन्दीतर भाषा-भाषी नेताओं और विद्वानों ने

हिन्दी को महत्त्वपूर्ण भाषा बताते हुए इसे राष्ट्रभाषा बनाने की माँग रखी। यह एक नये किस्म का सामूहिक भाषा-चिंतन था । लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू और राजगोपालाचारी हिन्दी को आजादी दिलाने वाली भाषा कहते थे। राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर भाषा की आंतरिक चेतना हिन्दी के माध्यम से मुखर होने लगी थी।

स्वतंत्रता के पाँच-छह सौ वर्ष पहले से ही हिन्दी का भक्ति-साहित्य सांस्कृतिक एकता का मजबूत आधार था। भक्ति कालीन संतों ने स्वाधीन चेतना को जाग्रत करने का अभियान सदियों तक चलाया- **'संतन को कहाँ सीकरी सों काम'** जैसी अभिव्यक्ति उसका प्रमाण है। इस कालखंड में भाषा की भिन्नता भी भावात्मक एकता में बाधक नहीं थी। पूरा भक्ति साहित्य इसका प्रमाण है। मनुष्य मात्र में एक ही महाज्योति का प्रकाश है- इसे झंकृत करने में कश्मीर की ललद्य, तमिलभाषी संत तिरुवल्लुवर व आंडाल, मराठी के ज्ञानदेव, नामदेव, हिन्दी भाषी कबीर-रैदास, सूरदास, तुलसीदास, गुजराती के संत अखा, नरसी मेहता व टुकड़ो, पंजाबी के गुरु गोविन्द सिंह, बाबा लालदास, हरियाणा के गुरु जम्भेश्वर, ओड़सी-बंगाली के महाप्रभु चैतन्य, असमी के शंकरदेव-माधवदेव, छत्तीसगढ़ के गुरु घासीराम, बिहार के दरियासाहेब तथा राजस्थान के दादू दयाल की सोच एक जैसी दिखती है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज भाषायी अन्तश्चेतना के सूत्र शिथिल होते जा रहे हैं। भारतीय भाषाओं में अध्यात्म-संस्कृति और भारतबोध की अभिव्यक्ति एक जैसी ही है। स्वर भिन्न है सुर एक है। यही चेतना भारत को जीवंत बनाती है। वैदिक ऋषि की वाणी और तिरुवल्लुवर के प्रभु स्मरण में भाषा भिन्न है पर भाव एक है।

हिन्दी सबको साथ लेकर चलने वाली भाषा है। अतः समाजशास्त्रियों, स्वाधीनता सेनानियों ने भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी को साझा किया है और भाषा-चिंतन में सम्मिलित करने का आग्रह भी।

आजादी के दौरान भाषायी संस्थानों एवं साहित्यिक संस्थाओं का गठन कर भाषा-चिंतन को नया रूप दिया गया था। यह अभियान स्वाधीन चेतना से जुड़ा था। इसमें भाषा-शास्त्री चिंतन से अधिक संस्कृति के संरक्षण की पहल दिखती है। भाषा का यह चिंतन, संस्कृति का नया अध्याय गढ़ता है। फलतः पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण का भाषायी अन्तर्सम्बंध प्रांतीय भाषाओं में खोजा जाने लगा। भाषायी चिंतन द्वारा सांस्कृतिक अन्तश्चेतना का विस्तार आजादी का महत्त्वपूर्ण पहलू था। **'हिन्दी वर्धिनी सभा', 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा',**

'साहित्य सम्मेलन प्रयाग', इन संस्थाओं की कई उपशाखाएँ तथा **'हिन्दी समिति वर्धा'** और **'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार समिति चेन्नई'** भाषायी चेतना द्वारा एकात्मता को ही जाग्रत करती हैं। इसी समय भारतीय भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद का कार्य होने लगा। महात्मा गाँधी, पुरुषोत्तमदास टण्डन, काका कालेलकर आदि ने अनेकों बार 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की अध्यक्षता करते हुए भाषा-चिंतन का विमर्श खड़ा किया था। कांग्रेस पार्टी के जो राजनीतिक प्रस्ताव अंग्रेजी में पारित होते थे अब हिन्दी में पारित होने लगे। इस प्रकार हिन्दी की स्वीकार्यता बढ़ी और राष्ट्र भाषा के रूप में उसकी सुगबुगाहट होने लगी। हिन्दी, हिन्दीतर प्रदेशों में सांस्कृतिक आदान-प्रदान का माध्यम बनी। उस दौरान तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम के साहित्य का अनुवाद हिन्दी में और हिन्दी का दक्षिण की भाषाओं में होने लगा। दुर्भाग्य से आजादी के बाद राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के अन्दर निहित संकीर्णता ने भाषाओं की सांस्कृतिक एकता में दरार डालने का काम किया। यह चिंता का विषय है; पर नयी शिक्षानीति 2020 में मातृभाषा को महत्त्व देने के कारण नयी सम्भावनाएँ दिखने लगी हैं। मातृभाषा में शिक्षा देना सरकार का प्रमुख लक्ष्य है। भाषाओं के माध्यम से संस्कृति को मजबूत करने का यह बड़ा अवसर है। यह राष्ट्रीय एकता का महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो भाषा-चिंतन से प्रत्यक्ष जुड़ता है।

आजादी के बाद अन्तर्भाषिक चेतना को गतिशील बनाने के लिए संविधान में त्रिभाषा का सिद्धांत सम्मिलित किया गया। पर आजादी के अमृत महोत्सव काल तक उसका कोई सकारात्मक संकेत देखने को नहीं मिला। समाजशास्त्री इसे राष्ट्रीयता का क्षरण कहते हैं। इस चेतना को नई गति प्रदान करने के लिए तमिलनाडु के लोगों ने एक अभिनव प्रयोग- **'काशी तमिल संगमम्'** के रूप में किया है। भाषा के विकास के साथ सांस्कृतिक चेतना का यह अहम् पक्ष है। इसमें भाषा की शक्ति का अधिकतम प्रयोग दिखता है। दक्षिण की प्रांतीय भाषाओं के प्रति उदासीनता अन्तर्भाषिक चेतना को कमजोर करती है। आज हिन्दीतर प्रांतीय भाषाओं में एकता के चित्र धूमिल होते जा रहे हैं। जातीय चेतना और देशबोध के साथ देसी ठेठपन का ठाट भी जड़वत् हो गया है। दिल्ली, भोपाल की साहित्यिक गुटबाजी, उत्तर आधुनिकता, यूरोपीय, फैशन, मार्क्सवाद, स्त्री और दलित विमर्श के मुहावरों में संस्कृति की चेतना धूमिल होती जा रही है। सांस्कृतिक चेतना के विम्ब महावृत्त बनने के पूर्व ही समाप्त होते जा रहे हैं। विश्वयारी और यूरोपीय आधुनिकता की बयार में हमारी सांस्कृतिक अनुभूतियाँ दुर्बल होती जा रही हैं।

राष्ट्रीय एकता, समता और समानता के लिए भाषाओं में अभिव्यक्त सांस्कृतिक समन्वय महत्त्वपूर्ण है। भाषा की उपयोगिता संस्कृति का संरक्षण है। संस्कृति, एकता की सूत्रधार होती है। अतः आज भाषा-चिंतन बदलाव की अपेक्षा रखता है। नाटक, संगोष्ठी, साहित्यिक यात्राएँ, वाद-संवाद और अनुवाद के माध्यम से एकता विधायक तत्त्वों की पहचान की जा सकती है। **यह कार्य सदियों पूर्व संस्कृत भाषा ने किया था। यह जानना आवश्यक है कि शास्त्रों का निर्माण संस्कृत भाषा में हुआ था।** हिन्दी और अन्य भाषाएँ- दैनिक जीवन में अन्यान्य कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थीं। उनका अपना शास्त्र नहीं था। आदि शंकराचार्य अकस्मात् ही नहीं दक्षिण-उत्तर-पूर्व-पश्चिम संस्कृत भाषा का आधार ग्रहण कर भावों का एकान्वयन कर रहे थे। उनके पूर्व आजीवक, घोषाल, केशकम्बली, जैन, बौद्ध, सिद्ध, नाथ, संत और अन्यान्य धर्माचार्यों ने संस्कृति की सत्ता को स्थापित करने में प्रायः संस्कृत भाषा को ही आधार बनाया था। रामकथा की व्यापकता वाल्मीकीय रामायण, कृत्तिवास, कम्बरामायण, सिंधी, पंजाबी तथा अन्य भारतीय भाषाओं तक थी। संस्कृत भाषा ही सांस्कृतिक एकता की धुरी थी।

प्रश्न यह है कि स्वतंत्र भारत में संस्कृति की अन्तर्भाषिक चेतना का विस्तार कैसे हो? वैश्विक स्तर पर तकनीकी ज्ञान-विज्ञान, सैन्ययुद्ध पद्धति, उच्च-शिक्षा और मानविकी में आदान-प्रदान का क्रम चल रहा है, दुर्भाग्यपूर्ण है कि भाषा के विकसित चिंतन के उपरांत भी भारतीय भाषाओं का परस्पर आदान-प्रदान शिथिल है। विगत दशकों में डॉ. लोहिया ने अंग्रेजी हटाओ अभियान द्वारा इस चेतना को जाग्रत किया था, पर वह अल्पजीवी बनकर रह गया। आध्यात्मिक राग भारत की चेतना का सहज प्रवाह है। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, योग, जैन-बौद्ध ग्रंथों में जिस अध्यात्म चेनता का उच्छल प्रवाह भाषायी सीमा का अतिक्रमण करते हुए राष्ट्रीय एकता को शक्तिशाली कर गया था- आज वह क्यों क्षीण है? साहित्य सर्जकों का भाषा-चिंतन द्वारा राष्ट्रीय एकता का स्वप्न देखना समय की माँग है। आधुनिक काल में तमिल साहित्य के सुब्रह्मण्यम भारती, गुजराती भाषी स्वामी दयानंद, तिलक महाराज का गीता भाष्य और राष्ट्रीय आंदोलन में हिन्दी का नेतृत्व ऐसे कारक हैं जिनके माध्यम से इस चेतना को बलवती बनाया जा सकता है।

भाषिक अन्तर्चेतना सदियों से विविधता में एकता का स्वर मुखरित करती रही है। भाषा और लिपि की बहुरूपता के बावजूद हिन्दी ने अन्य भारतीय भाषाओं से ताल-मेल बैठाने का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इससे राष्ट्र की एकता मजबूत हुई है। भाषा-चिंतन और

चिंतकों को इस दिशा में देखना भी महत्त्वपूर्ण होगा। भाषायी चिंतन में संस्कृति के ये प्रेरक बिन्दु राष्ट्रीय एकता के विधायी तत्त्व हैं। इस संदर्भ में कथाकार निर्मल वर्मा का कथन सटीक लगता है- **"भाषा, मिथक और संस्कृति का अन्तर्सम्बंध एक समूह के सदस्यों को एक सामूहिक अस्मिता में एकसूत्रित करता है। जिस तरह यूरोप की संस्कृति की कल्पना ग्रीक और लातानी भाषा तथा उससे सम्बंधित मिथक कथाओं से अलग नहीं की जा सकती, उसी तरह भारतीय संस्कृति ने अपना रूपाकार संस्कृत में रची उन पौराणिक कथाओं और महाकाव्यों से प्राप्त किया था जिसकी आदिम स्मृति (आर्की टाइप मेमोरी) आज भी भारतीय मानस पर अंकित है।"**

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज
बुद्धा हाईट्स, 1202, आशापुर,
सारनाथ, वाराणसी-221007 (उ.प्र.)
मो.नं. - 9415787367

मुझे मेरा गाँव लौटा दो

—प्रो. बाबूराम त्रिपाठी—

''डाक्टर साहब, हमारे बाबूजी अब कैसे हैं?'' रामलखन ने हाथ जोड़कर पूछा।

''ठीक हैं, पर अभी आप लोग उनसे नहीं मिल सकते, वे बेहोशी की हालत में हैं। अच्छा यह बताइए, आपके गाँव से जो भी आ रहा है, वही उन्हें बाबूजी कहता है, समझ में नहीं आता कि यह व्यक्ति इतना लोकप्रिय क्यों है।''

''डॉक्टर साहब, इन्हें पूरा गाँव बाबूजी इसलिए कहता है कि ये हम सभी के अभिभावक हैं। इसके अतिरिक्त ये अपने लिए नहीं, गाँव वालों के लिए जीते हैं। गाँव का सुख-दु:ख, इनका सुख-दु:ख होता है। गाँव के किसी के ऊपर आफत-विपत्ति आती है, तो उसे ये अपने ऊपर ले लेते हैं। इनकी कृपा से इस समय गाँव के छ: गरीब लड़के उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जबकि पैसों के अभाव में वे घर बैठ गये थे।'' इतना कहते-कहते रामलखन का कंठ अवरुद्ध हो गया। फिर तो उनकी वाणी द्रवित होकर आँखों से बह निकली न!

''तो ठीक है, आप लोगों के बाबूजी को जब होश आ जायेगा, तो सिस्टर बारी-बारी से बुलवाकर मिलवा देगी। वैसे यदि आप सभी कल सुबह आठ बजे आयें, तो बेहतर होगा। जरा अपने गाँव के प्रधान को मेरे पास भेज दीजिए।'' इतना कहकर डॉक्टर सहाय अपने चैम्बर में चले गये।

''मे आई कम इन सर !''

''यस, कम इन।''

''तो आप ही महिमापुर के प्रधान हैं?''

''जी, मैं ही वहाँ का प्रधान हूँ, मेरा नाम अवधराज है।''

''पढ़े-लिखे लग रहे हैं, कहाँ तक पढ़े हैं?''

''सर, मैंने राजनीति शास्त्र में एम.ए. किया है, ख्वाब ऊँचा देखा था, पर दुर्भाग्यवश मेरा ख्वाब, ख्वाब ही रह गया। नौकरी मेरे लिए मृगतृष्णा बनकर रह गयी।''

''अब क्या करते हैं?''

''नौकरी के चक्कर में जब मेरे बाल सफेद होने लगे, तो पिताजी ने मुझे खेती-बारी में लगा दिया। किसी तरह से गुजारा हो जा रहा है।''

''अरे भाई, किसी तरह से गुजारा होता, तो इतनी महँगी गाड़ी से चलते? लगता है, खेती-बारी के अतिरिक्त आमदनी का कोई और स्रोत है।''

''नहीं सर, खेती-बारी ही मेरी आमदनी का जरिया है। हाँ, यह जरूर है कि मैं मन लगाकर अपनी खेती करता हूँ। इसी का परिणाम है कि आज मेरे पास खेती के सारे अत्याधुनिक साधन हैं। समय से खाद-बीज और सिचाई की व्यवस्था कर देता हूँ, जिससे पैदावार ठीक-ठाक हो जाती है। इसके अलावा कुछ साग-सब्जी की भी खेती कर लेता हूँ। उससे कम समय में एक अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है।''

''अच्छा प्रधान जी, यह बताइए कि यह आदमी, जिसका मैंने आपरेशन किया है, इसके प्रति आपके गाँव के लोगों की इतनी श्रद्धा क्यों है? देखने में तो यह बहुत साधारण लगता है। इसके अलावा इसके सिर पर प्रहार क्यों किया गया? वह तो आप लोग समय से उठा लाये, नहीं तो हाथ से निकल गया होता, क्योंकि घाव काफी गहरा था।''

''क्या बताऊँ, डॉक्टर साहब, कुछ कहने लायक नहीं है। बाबूजी, पेशे से अध्यापक रहे हैं और वह भी एक सफल अध्यापक। शहर में नौकरी करने के बाद भी जीवनभर किराये के मकान में रहे। हाँ, इतना इन्होंने अवश्य किया कि अपने लड़के दीपक को अच्छी शिक्षा दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज वह एक बड़े ओहदे पर है। उसकी शादी एक संस्कारनिष्ठ लड़की से हुई है। बाबूजी रिटायरमेन्ट के बाद गाँव चले आये और इन्होंने अपनी पूरी ऊर्जा गाँव के विकास में लगा दी। इन्हीं के प्रयासों का परिणाम है कि हमारे गाँव में मूलभूत सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो गयी हैं।''

''मेरी समझ में नहीं आता कि इन्हें यह चोट आयी कैसे? जब ये अपने गाँव के लिए जी रहे हैं तो एक तरह से सन्त हैं। खैर, कोई बात नहीं, कल सुबह तक ये अवश्य होश में आ जायेंगे। हाँ, इनकी देखभाल के लिए यहाँ दो लोगों का रहना आवश्यक है। अच्छा, मैं चल रहा हूँ, इन्हें कोई दिक्कत हो तो नर्स से कहकर मुझे बुलवा लीजिएगा।'' इतना कहकर डॉक्टर सहाय अपने बँगले पर चले गये।

उनके जाने के बाद गाँव के प्रधान अवधराज बाबूजी के बेड के पास स्टूल पर बैठकर सोचने लगे—जगदीश और नरेन्दर, इन दोनों ने अपने गाँव को गोड़ कर रख दिया है। उस दिन पंचों ने कितना अच्छा और व्यावहारिक निर्णय दिया था। मात्र दो फिट जमीन को लेकर चौधरी रामजनम और सुरेश महतो के बीच महाभारत होता था। इस थोड़ी-सी जमीन के चक्कर में दोनों लोग कोर्ट-कचहरी और थाना-पुलिस, किसकी शरण में नहीं गये, पर बाबूजी की रचनात्मक सोच के चलते इतवार को पंचायत बुलायी गयी। पंचों ने मौका-मुआयना

करने के बाद निर्णय दिया कि सुरेश महतो ने जबरदस्ती चौधरी रामजनम की जमीन पर कब्जा कर रखा है, इसलिए इन्हें चाहिए कि ये विवादित जमीन पर से अपना कब्जा हटा लें, सिर-फुड़ौवल न करें।''

सुरेश महतो मान भी गये, पर घर पहुँचने पर उनकी पत्नी भगवन्ती फैल गयी, क्योंकि जगदीश और नरेन्दर ने पंचायत सम्पन्न होने के बाद तुरन्त आकर उनके कान भर दिये थे—''काकी, आपके साथ पंचों ने ज्यादती की है। भला बताइये, दसियों वर्ष से चले आ रहे कब्जे से आपको बेदखल किया जा रहा है और हमारे महतो काका चुप्पी साधे बैठे हैं। ये बेचारे सीधे-सादे हैं, उन लोगों ने जो कहा, उसे मान लिया। जानती हो काकी, वह जो मास्टर आया है, जिसे लोग बाबूजी कहते हैं, बड़ा शातिर है। वह शहर से यह सोचकर आया है—'महिमापुर गाँव को जहन्नुम में पहुँचाकर ही साँस लूँगा', इसके अलावा वह दलाल भी तो है। चौधरी रामजनम से उनके पक्ष में निर्णय दिलवाने के लिए उसने पाँच हजार रुपये लिये हैं। पंच लोग भी भंग छानकर आये थे, जो मास्टर के कहने पर उन्होंने चौधरी के पक्ष में निर्णय दे दिया।''

इसके बाद तो भगवन्ती काकी अपने पति पर बरस पड़ीं न—''तुम्हारी मूर्खता के चलते मैं पग-पग पर जलील हो रही हूँ। जब इतने बड़े दानवीर हो, तो घर-द्वार चौधरी रामजनम को देकर कटोरा लेकर भीख माँगो और मुझे मायके पहुँचा दो। अब देखते क्या हो, जाकर पंचों से कह दो कि मुझे यह निर्णय मान्य नहीं है।''

''लेकिन मैंने तो भरी सभा में पंचों के निर्णय को मान लिया है। मैं अब थूककर चाटने नहीं जाऊँगा। वह जमीन चौधरी की ही है, वह तो इन दोनों के उकसाने पर मैंने उस पर कब्जा किया था। वैसे भी इन दोनों के चक्कर में मैं बहुत कुछ गँवा चुका हूँ। अब मैं सुकून की जिन्दगी जीना चाहता हूँ। तनाव की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है? कभी थाने की शरण में जाओ, तो कभी भूखे-प्यासे कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाओ, अब यह सब मुझसे नहीं होगा। जिन लोगों ने तुम्हारे कान भरे हैं, वे हमारे हितैषी नहीं, दुश्मन हैं दुश्मन। इतना ही नहीं, ये लोग वकीलों के दलाल भी हैं। सीधे-सादे लोगों को बहकाकर वकीलों के यहाँ पहुँचाते हैं। आज गाँव में जितने भी मुकदमे चल रहे हैं, इन दोनों की बदौलत चल रहे हैं। इतना ही नहीं, सभी मुकदमे झूठ की दीवार पर खड़े किये गये हैं। बाबूजी (मास्टर साहब) जब से गाँव में आये हैं, तब से धीरे-धीरे गाँव की सुख-शान्ति वापस आ रही है। इस महापुरुष ने अपने गाँव को विकास के रास्ते पर ला दिया। गाँव में अमन-चैन लाने के लिए कभी-कभी वे अपने भी

अमन-चैन की चिन्ता नहीं करते। पंचायत में जो निर्णय हुआ, सर्वसम्मत से हुआ है, इसलिए मैं उस निर्णय का अनादर नहीं करूँगा।''

इतना सुनते ही भगवन्ती आग बबूला हो गयी—''तुम नपुंसक हो नपुंसक। अच्छा होगा कि चूड़ियाँ पहनकर घर में बैठो, अब मैं मोर्चा सँभालूंगी। मेरे साथ नरेन्दर और जगदीश रहेंगे, ये दोनों हमेशा हमारे सुख-दुःख में खड़े रहते हैं। देखती हूँ, कल कैसे चौधरी रामजनम हमारा कब्जा हटाता है।''

''ठीक है, जो मन में आये, करो, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। लेकिन देख लेना, ये दोनों, कल वहाँ से ऐसे फूट लेंगे कि तुम देखती रह जाओगी।''

''आप जैसे डरपोक हैं वैसे ही सारी दुनिया को समझते हैं। देखिएगा, कल सुबह क्या गुल खिलाती हूँ।''

दूसरे दिन सुबह होते ही दोनों पक्षों में भिड़ा-भिड़ी हो गयी। एक तरफ भगवन्ती के मायके से आये आठ-दस गुण्डे थे, तो दूसरी ओर रामजनम और उनके समर्थक। कहा-सुनी में जब दोनों ओर से तनातनी हो गयी, तो किसी ने दौड़कर बाबूजी को सूचित कर दिया। वे मार्निंग वाक छोड़कर भागे-भागे आये और दोनों पक्षों के बीच में खड़े होकर बीच-बचाव करने लगे—''देखो भाई, इस खून-खराबे से कुछ नहीं मिलने वाला है। भगवन्ती, आप अपने आदमियों को रोको, ये लोग तो मार-पीट करके चले जायेंगे, खामियाजा तुम्हें और तुम्हारे पति को भुगतना पड़ेगा। थाना-पुलिस और कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाते-लगाते तुम्हारे पति हैरान हो जायेंगे। वैसे भी पंचों ने जो निर्णय दिया है, वह हर दृष्टि से उचित है।''

इतना सुनते ही भीड़ का लाभ उठाकर भगवन्ती के मायके से आये गुण्डों में से किसी ने बाबूजी के सिर पर लाठी से प्रहार कर ही दिया। वे बेचारे चक्कर खाकर गिर पड़े। उनके सिर से बुरी तरह से रक्त निकलने लगा। इसके बाद तो भगदड़ मच गयी न! प्रधान और गाँव के लोग उन्हें उठा-पटाकर हास्पिटल ले गये। गनीमत यह थी कि प्रधान जी ने तुरन्त अपने गमछे को फाड़कर एक चीर निकाला और घाव को कसकर बाँध दिया, जिससे रक्त का निकलना तो बन्द हो गया, पर अस्पताल पहुँचते-पहुँचते ये बेहोश हो गये।

''अरे आप अभी जाग रहे हैं? बरामदे में पड़ी बेंच पर जाकर थोड़ी देर आराम कर लें, तब तक मैं यहाँ हूँ। इतना कहकर डॉक्टर सहाय मास्टर साहब की नाड़ी देखने लगे।

गाँव वाले पूरी रात अस्पताल के बरामदे में बैठे गाँव की गन्दी राजनीति की चर्चा करते रहे। सुबह आठ बजे नर्स ने आकर शुभ सूचना दी कि रोगी होश में आ गया है, आप लोग

एक-एक करके देख आइए, भीड़ न लगने पाये क्योंकि रोगी के पास भीड़ देखकर डॉक्टर साहब का पारा गरम हो जाता है। वे बड़े मूडी हैं, क्रोध में किसी की नहीं सुनते।''

गाँव वाले उसकी बात मान गये। प्रधान जी अन्दर गये बाबूजी ने उनसे धीरे से पूछा—''किसी ने थाने में तो सूचना नहीं दे दी?''

प्रधान जी झूठ बोल गये—''जब तक आप हमारे साथ अभिभावक के रूप में हैं, तब तक हमें थाने-पुलिस की जरूरत ही क्या है?'' प्रधान जी ने इतना कहा ही था कि डॉक्टर सहाय के साथ थाना प्रभारी मनोज सिनहा बेड के पास आ गये। डॉक्टर साहब ने प्रधान जी को इशारे से बाहर जाने के लिए कहा। सिनहा साहब ने पूछा—''अब आप कैसे हैं?''

''ठीक हूँ, बीच-बचाव करने के दरम्यान अचानक चक्कर आ गया और मैं गिर पड़ा। सिर के नीचे ईंट न पड़ी होती, तो बिल्कुल चोट न लगती। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है इंसपेक्टर साहब! जो होना था,वह हो गया। वैसे भी होनी बड़ी प्रबल है, उसके सामने कहाँ किसी की कुछ चल पाती है।''

आप झूठ बोल रहे हैं, आपके सिर पर किसी ने लाठी से प्रहार किया था, किसी ने क्या, लाठी चलाने वाला व्यक्ति भगवन्ती के मायके का है, उसका नाम भग्गू है।''

''नहीं साहब, ऐसा कुछ नहीं है। ब्लड प्रेशर का रोगी होने के कारण मुझे प्राय: चक्कर आ जाता है, इसके पहले भी मैं कई बार गिर चुका हूँ।''

''तो मैं भग्गू का चालान न करूँ? अच्छा हुआ, जो आपने बयान दे दिया। अभी थाने में उसकी पूजा भी नहीं हुई है, उसने आज अच्छे का मुँह देखा है, जो उसकी अभी तक सेवा नहीं हुई। अच्छा, मैं चला रहा हूँ, नमस्कार।''

इंस्पेक्टर साहब के जाने के बाद प्रधान जी ने शिकायती लहजे में कहा—''बाबूजी, आप सरासर अन्याय कर रहे हैं, आपको झूठा बयान नहीं देना चाहिए था। जगदीश और नरेन्दर, इन दोनों पाजियों ने गाँव वालों का जीना दूभर कर दिया है, इन्हीं दोनों के उकसाने पर भग्गू ने लाठी चलायी थी। आप जैसे सन्त पर प्रहार करना मानवता पर प्रहार करना है। भग्गू को बचाना अत्याचार और अन्याय को बढ़ावा देना है। इंस्पेक्टर साहब उस कमीने को छठी का दूध याद दिला देते, लेकिन आपकी अहिंसावादी नीति ने सब चौपट कर दिया।''

''देखो भाई, प्रतिशोध की भावना से कोई काम नहीं करना चाहिए, उसकी एक चिनगारी न जाने कितने घरों को जलाकर राख कर देती है। इसके अलावा प्रतिशोध की अग्नि कभी बुझती भी तो नहीं, पुश्त दर पुश्त धधकती रहती है। इसलिए शुरू में ही इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वह भभके ही न, उसकी चिंगारी को कुचल देने में ही हमारी भलाई

है। तुम देख लेना, थाने से छूटने के बाद भग्गू घर नहीं जायेगा, मेरी कुशल-क्षेम लेने के लिए यहाँ आयेगा। वैसे भी, मैं चाहता हूँ कि अपने गाँव में अमन-चैन बना रहे। अच्छा, अब तुम जाओ, मुझे बोलने में तकलीफ हो रही है। गाँव वालों से कह दो, मैं ठीक-ठाक हूँ।'' इतना कहकर उन्होंने बड़ी मुश्किल से करवट बदली।

ठीक एक हफ्ते बाद बाबूजी अस्पताल से घर आये। उन्हें देखने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी। उन्होंने हाथ जोड़कर सभी लोगों से कहा—''आप सभी से मेरी विनती है कि छोटी-मोटी बातों को लेकर इस गाँव को कुरुक्षेत्र न बनाइए। यहाँ के अमन-चैन को ईर्ष्या, द्वेष और नफरत की आग में झुलसने से बचाइए। दुःख तो इस बात का है कि हमारा गाँव विकास के रास्ते से भटक गया है। इससे अच्छा तो हमारे बचपन का गाँव था। लोग भले ही पढ़े-लिखे नहीं थे, पर समझदार तो थे, एक-दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझते थे। इतना ही नहीं, बड़ी-सी-बड़ी समस्याओं को पंचायत के द्वारा सुलझा लेते थे। पंचायत ही उनके लिए थाना-पुलिस थी और पंचायत ही कोर्ट-कचहरी। सच पूछा जाय तो मैं अपने गाँव यह सोचकर आया था कि आप लोगों के सहयोग से इसे एक आदर्श गाँव का रूप दे दूँगा, पर यहाँ आकर मैंने महसूस किया कि मैं अपने गाँव नहीं, किसी ऐसे गाँव में आ गया हूँ, जहाँ की दूषित मानसिकता के चलते एक आदमी दूसरे आदमी को फूटी आँख नहीं देखना चाहता। कभी इस गाँव में मोहन काका थे, सलीम मियाँ थे, भोला साहू थे, अलगू बाबा थे और मनोहरा काकी जैसी देवी थीं। ये लोग गरीब जरूर थे, पर दिल के राजा थे। आप लोग विश्वास नहीं करेंगे कि मोहन काका पेशे से अध्यापक थे, वह भी किसी कालेज और विश्वविद्यालय में नहीं, प्राइमरी स्कूल में। वेतन उनका कम था, पर दिल बड़ा था। उनकी कृपा से गाँव का जो भी बच्चा पढ़ना चाहा, उन्होंने उसकी पढ़ाई में आर्थिक अभाव को आड़े नहीं आने दिया, उसकी यथाशक्ति सहायता की। सलीम मियाँ ताँगा हाँकते थे, पर गाँव के किसी भी व्यक्ति को यदि अस्पताल ले जाने की जरूरत पड़ी, तो वे बिना कहे ताँगा लेकर उसके दरवाजे पर हाजिर हो जाते थे।

अलगू बाबा वैद्य थे। जड़ी-बूटियाँ कूट-पीसकर दवाइयाँ बनाते थे और रोगियो को निःशुल्क दवा देते थे। आधा रोग तो उनके जादुई स्पर्श से ही ठीक हो जाता था। बड़ा जसी हाथ था उनका। दूर-दूर से रोगी चीखते-कहराते आते थे और आराम महसूस करते हुए लौटते थे। मनोहरा काकी पूरे गाँव की काकी थीं। एक तरह से वे अन्नपूर्णा थीं। लाठी के सहारे चलकर वे लोगों की खोज-खबर लेती थीं। शाम को जिस घर की रसोई से धुँआ नहीं उठता था, ठेगते-ठेगते वे वहाँ राशन-पानी लेकर पहुँचा जाती थीं। भाइयों, महिमापुर गाँव ऐसी

महान आत्माओं का गाँव रहा है। जगदीश और नरेन्दर जैसे लोगों का नहीं, जिन्हें इस गाँव के अमन-चैन से दुश्मनी है। ये लोग अपनी सारी ऊर्जा इस गाँव को पतन के गर्त में धकेलने में लगा दे रहे हैं। लोगों को आपस में लड़ाना-भिड़ाना इनके जीवन का मकसद हो गया है।

लेकिन मैं हार मानकर चुपचाप बैठने वालों में नहीं हूँ। जो मन में ठान लेता हूँ, उसे पूरा किये बिना साँस नहीं लेता। यहाँ की दूषित मानसिकता के सामने घुटने नहीं टेकूँगा। मैं हिंसा के मार्ग पर भी चलना जानता हूँ, पर मेरी आत्मा उस स्तर पर उतरने से मुझे रोक रही है। वैसे भी उस मार्ग पर चलने से विकास की गति अवरुद्ध हो जायेगी और फिर तो विस्फोट पर विस्फोट होगा, जो हम पढ़े-लिखे लोगों को शोभा नहीं देता। इसलिए गाँव के विकास के प्रवाह को अवरुद्ध न करें, उसे आगे बढ़ने दें। हाँ, यदि मेरा यहाँ रहना आप सबको रास न आ रहा हो, मेरी रचनात्मक सोच आप लोगों के गले के नीचे न उतर रही हो, तो मैं यहाँ से आज ही चला जाता हूँ।'' इतना कहते-कहते उनकी आँखें भर आयीं।

कुछ संयत हुए तो पुन: बोले—''लगता है, अपना गाँव कहीं खो गया है। उसे कुछ लोगों ने अन्याय, नफरत और बेईमानी की गुफा में छिपा दिया है, वह दिखाई भले ही नहीं दे रहा है, पर उसके सिसकने की आवाज मेरे कानों तक आ रही है। मैं इसे मुक्त कराना चाहता हूँ, इसके लिए मुझे भले ही अपने प्राणो की आहुति देनी पड़े, पर पीछे नहीं हटूँगा। अत: आप सभी विषेश रूप से जगदीश और नरेन्दर से अनुरोध करता हूँ कि तुम लोग मुझे मेरा गाँव लौटा दो।''

इसके बाद तो वहाँ उपस्थित जगदीश और नरेन्दर, दोनों के मस्तक झुक गये, कारण जो भी रहा हो।

पूर्व अध्यक्ष, शब्दविद्या संकाय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
फो.नं.- 9598070524

बौद्ध परिपथ की साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा

—डॉ. रामसुधार सिंह—

आज का विश्वमानव विज्ञान का सहारा लेकर अपनी श्रेष्ठतम ऊँचाइयों तक पहुँच गया है। उसके पास सबकुछ है, पर शान्ति नहीं है। दो विश्व युद्धों की विभीषिका देखकर भी इसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा है और वह तीसरे विश्वयुद्ध की ओर निरंतर अग्रसर हो रहा है। मानव ने प्रकृति का निरंतर दोहन कर उसे खोखला बना दिया है। यह एक अतिवाद है। इस समय के बड़े कवि डॉ. केदारनाथ सिंह ने अपनी एक कविता में कहा है कि 'पृथ्वी पर पानी के बारे में सोचना है बुद्ध के बारे में सोचना।' मेरा मानना है कि केवल पानी ही क्यों ? पूरी धरती को बचाने के लिए हमें बुद्ध के बारे में सोचना होगा।

कथा आती है कि बोधगया में जब भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे पूरी तरह मौन हो गये। देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई। वे भागे बुद्ध के पास आये और इस चुप्पी का कारण पूछा। बुद्ध ने कहा कि जिनके भीतर जग जाने की संभावना है, वे मुझे देखकर ही जग जायेंगे और जो सोये हुए हैं, उनपर मेरे बोलने का भी कोई असर नहीं होगा, फिर किसलिए बोलना ? बिल्कुल सही था। फिर देवताओं ने एक उपाय निकाला। उन्होंने बुद्ध से कहा कि इन दो के अलावा एक तीसरी कोटि के लोग भी हैं, जिन्हें सिर्फ एक हल्के से धक्के की जरूरत है। ऐसे लोग आपकी वाणी की टंकार से जाग उठेंगे। और फिर बुद्ध ने बोलना शुरू किया और इतना बोले जितना किसी ने नहीं बोला, इतना चले जितना कम लोग चले और वे जहाँ भी गये वहाँ हर तरह के दुःख से मुक्ति की चाहत रखने वाले लाखों-लाखों लोग उनके साथ जुड़ते गये। यह आश्चर्य में डालने वाला तथ्य है कि ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध जहाँ भी गये, वह प्रमुख रूप से हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र रहा, बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल के तराई वाले क्षेत्र, लेकिन बुद्ध का संदेश पूरी दुनिया में फैला सारी सीमाओं को पार कर, किन्तु अफसोस यह है कि जिन क्षेत्रों से बुद्ध गुजरे, वहाँ उनका असर नहीं के बराबर रहा।

भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा था 'चरथ भिक्खवे चारियं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकंपाय।' अर्थात् हे भिक्षुओ, लोगों के हित और सुख के लिए निरंतर चलते रहो। बुद्ध के इन वचनों से प्रेरित होकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. सदानंद शाही ने जहाँ-जहाँ बुद्ध गये, उन स्थानों की यात्रा की एक परिकल्पना की। यात्रा दल में प्रतिष्ठित साहित्यकार, कलाकार, इतिहासविद एवं शिक्षाविद

शामिल हुए। इस यात्रा का उद्देश्य प्रतिभागियों को बुद्ध की गहन शिक्षाओं से जोड़ना रहा, जिससे वे अहिंसा, प्रेम व सहानुभूति के सिद्धान्तों को आत्मसात कर सकें। यह यात्रा एक सचल कार्यशाला के रूप में रही जिसमें कवि, लेखकों और विद्वानों ने विभिन्न स्थलों पर संगोष्ठियों में भाग लिया।

'चरथ भिक्खवे' यात्रा सिर्फ बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशों का महज अनुसरण नहीं रही, बल्कि शांति, करुणा और सद्भावना के उनके संदेश पर गहन आत्मचिंतन का अवसर भी थी। बुद्ध के चरणों की छुवन को महसूस करने के मन से बुद्ध परिपथ की इस दस दिवसीय यात्रा का शुभारंभ बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ से हुआ। यात्रा का शुभारम्भ करते हुए केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के कुलपति प्रो. डब्ल्यू. डी. नेगी ने कहा कि बुद्ध के उपदेशों को आत्मसात करने से शान्ति मिलती है। इस सचल कार्यशाला से लोग महात्मा बुद्ध के जीवन दर्शन को समझ सकेंगे। इस अवसर पर 'बुद्ध की धरती पर कविता' शीर्षक 'साखी' पत्रिका का लोकार्पण भी किया गया। यात्रा सारनाथ से प्रारम्भ होकर बोधगया, राजगीर, नालंदा, पटना, वैशाली, केसरिया, कुशीनगर, लुम्बिनी, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी से होती हुई पुनः सारनाथ आकर पूर्ण हुई।

सारनाथ से प्रारंभ हुई यात्रा का पहला पड़ाव बोधगया रहा। यहाँ हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के साथ प्रतिष्ठित कथाकार रणेन्द्र ने सभी का स्वागत किया। बोधगया मंदिर पहुँचने पर मंदिर के प्रमुख भन्ते ने सभी का खतक प्रदान कर स्वागत किया। मंदिर में नये और पुराने वास्तु तथा साँची, भरहुत, नागर आदि विभिन्न स्थापत्य शैलियों का संयोजन है। मंदिर स्थित भगवान बुद्ध की मूर्ति शान्तिमुद्रा में अवस्थित है। पीपल का वह वृक्ष जिसके नीचे बुद्ध को ज्ञान मिला था, वह बोधिवृक्ष कहा जाता है। सभी लोग ध्यानावस्था में कुछ देर बैठे। मंदिर से लौटकर मगध विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। संयोजक प्रो. शाही ने यात्रा के उद्देश्य पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर ललित आदित्य की पुस्तक 'देशजबुद्ध' का लोकार्पण किया गया। कथाकार रणेन्द्र ने कहा कि बुद्ध का प्रभाव झारखण्ड के आदिवासी क्षेत्रों में बहुत अधिक रहा है। गोष्ठी में रामसुधार सिंह, गगन गिल तथा रंजना अरगड़े ने भी विचार व्यक्त किया।

यात्रा का दूसरा पड़ाव नालंदा और राजगीर रहा। बोधगया से नालंदा 72 किलोमीटर दूरी पर है। नालंदा में हम सभी का स्वागत करते हैं 'नालंदा नव विहार' विश्वविद्यालय के प्राध्यापक, छात्र एवं कर्मचारीगण। यहाँ सप्तपर्णी का वृक्ष तो नहीं दिखा, किन्तु सप्तपर्णी नाम

से सभागार अवश्य है। अन्दर बुद्ध की एक प्रतिमा है। बगल में भिक्षु जगदीश कश्यप का चित्र रखा हुआ है। कश्यप जी ने बौद्ध साहित्य को देवनागरी में रूपांतरित कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। यहाँ मुझे राहुल सांकृत्यायन और धर्मानंद कौशांबी की याद आती है, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार करने में बड़ी भूमिका निभाई है। सभागार में एक संगोष्ठी हुई। यहाँ चेकोस्लाविया के विद्वान ने बुद्ध की शिक्षाओं को लेकर महत्त्वपूर्ण बातें कहीं। गोष्ठी के बाद 'अनाथपिण्डक' नामक भोजनालय में भोजन की व्यवस्था थी। इस नाम से केन्द्रीय तिब्बती संस्थान, सारनाथ में अतिथि भवन भी है। भोजन के बाद सभी बस में बैठते हैं और फिर नालंदा के खण्डहर। नालंदा के खण्डरों को एक बार पहले भी देख चुका हूँ। उस बार महावीर की निर्वाणस्थली पावापुरी भी गया था, किन्तु इस बार हमारी यात्रा में पावापुरी नहीं है। नालंदा को जितना देख रहा हूँ, उससे अधिक पढ़ चुका हूँ और लोगों से सुन चुका हूँ। किस तरह नालंदा प्राचीन समय में बौद्ध धर्म और दर्शन का विश्व प्रसिद्ध केन्द्र था। ह्वेनसांग और फाह्यान जैसे पर्यटकों ने नालंदा के स्वर्णयुगीन संपदा का विवरण प्रस्तुत किया है। उसी नालंदा को बख्तियार खिलजी ने भस्मीभूत कर दिया। कहा जाता है कि यहाँ का विश्वविद्यालय छः माह तक जलता रहा। सिहर जाता हूँ यह सोचकर कि कितनी महत्त्वपूर्ण संपदाएं जलकर राख हो गई होंगी। यह भी सुना गया है कि यहाँ के ढेर सारे ग्रंथों को लेकर लोग नेपाल, तिब्बत सहित कई अन्य देशों में भाग गये। इन्हीं में से कुछ ग्रंथों को राहुल जी अपनी नेपाल और तिब्बत की यात्राओं द्वारा भारत ले आये थे, जो आज भी पटना संग्रहालय में रखे गये हैं। सारनाथ स्थित केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान में इनमें से कुछ ग्रंथों का अनुवाद हो रहा है। कुछ ऐसे भी ग्रंथ हैं जिनका मूल संस्कृत संस्करण उपलब्ध नहीं है, किन्तु उनका तिब्बती भाषा में अनुवाद उपलब्ध है। इन ग्रंथों का फिर से संस्कृत और हिंदी में अनुवाद हो रहा है। ये सभी ग्रंथ बौद्ध दर्शन के विभिन्न संप्रदायों से संबद्ध हैं। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तिब्बत देश के बहुत से विद्वान और लेखक नालंदा से संबद्ध रहे होंगे, जिन्होंने संस्कृत ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद किया होगा। लेकिन मैं तो वर्तमान में नालंदा के इन खण्डहरों को देख रहा हूँ और उस गौरवशाली अतीत की कल्पना कर रहा हूँ। भीड़ बढ़ती जा रही है। लोग केवल फोटो खींचने में व्यस्त हैं। मुझे किसी की कही गई बात याद आती है कि फोटो तो कहीं भी मिल जायेगी, पहले जो देखने आये हैं, उसे तो देखें। शाम होने को है, सूरज पश्चिम में डूबने की तैयारी कर रहा है और हम राजगीर जाने के लिए बस की ओर लौट रहे हैं। आज रात ठहरना है राजगीर स्थित भव्य

'वीरायतन' में। जैन संप्रदाय का सर्वसुविधा संपन्न अतिथि भवन। राजगीर में भगवान बुद्ध लम्बे समय तक रहे और वेणुवन में अपने भिक्षुओं को उपदेश दिये थे। यहाँ गुप्त साम्राज्य के सम्राट ने बुद्ध से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। चारों ओर पहाड़ियों से घिरा राजगीर सचमुच गिरिकूट है। आज शरद पूर्णिमा है। चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं को निश्चिंत होकर चारों ओर बिखेर रहा है।

तीसरे दिन सुबह राजगीर से पटना की तैयारी। 'वीरायतन' की सुदरता, स्वच्छता और खुलापन सचमुच लाजवाब है। पटना जो कभी पाटलिपुत्र कहा जाता था- इतिहास का गौरव भरा साम्राज्य। सम्राट अशोक का पाटलिपुत्र और आज विहार प्रांत की राजधानी पटना। पटना की इस यात्रा में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के रामाज्ञा शशिधर एवं शैलेन्द्र जी भी जुड़ गये हैं। बस में सबके अपने-अपने रंग-ढंग हैं। रामाज्ञा और रमाशंकर जी किसान आंदोलन और संविधान पर बहस कर रहे हैं, युवावर्ग अपनी मस्ती में मस्त हैं। पटना पहुँचने पर अनुग्रह नारायण कालेज में संगोष्ठी आयोजित थी। कालेज गेट पर बुद्ध की एक बड़ी प्रतिमा स्थापित है। सभागार में बहुत सारे विद्यार्थी, कालेज के प्राध्यापकगण और प्राचार्य भी हैं। यात्रा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए प्रो. सदानंद शाही ने कहा कि भारत की विश्वगुरु की जो छवि है, उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका बुद्ध की उपस्थिति की है। विश्व की आधी से अधिक आबादी बुद्ध के प्रति नतमस्तक है। हमें उस पथ पर चलना है, जिस पर बुद्ध के पदचिह्न हैं। रंजना अरगड़े धर्मानंद कौशाम्बी के बारे में बताती हैं। रंजना अरगड़े गंभीर लेखिका हैं और उन्होंने धर्मानंद कौशाम्बी की आत्मकथा 'निवेदन' का मराठी से हिंदी में अनुवाद किया है। हमारे साथ रणेन्द्र जी भी हैं। रणेन्द्र जी वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी रहे हैं और 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास से उन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है। रणेन्द्र जी ने अपने संक्षिप्त उद्बोधन में युद्ध, उपनिवेश और मनुष्य द्वारा प्रकृति के शोषण को पृथ्वी और मनुष्य के लिए घातक बताया। गगन गिल और विहाग वैभव ने कविताएँ सुनाईं। गगन गिल हिन्दी की लब्धप्रतिष्ठ कवयित्री हैं और यह सुखद संयोग रहा कि इस वर्ष का साहित्य अकादमी सम्मान हिंदी में गगन गिल जी को मिला है।

और अब पटना का बिहार संग्रहालय। अभी यह नया बना है। यह संग्रहालय वर्तमान सरकार की सकारात्मक दृष्टि का परिचायक है। यहाँ पाषाणकालीन जीवन से लेकर अब तक की उपलब्धियों को दर्शाया गया है। अन्दर कुल आठ दीर्घाएँ हैं। पूरा देखने के लिए कम से कम दो दिन चाहिए। यहाँ कुर्किहार, नालंदा और नेगापट्टीनम (तमिलनाडु) से प्राप्त कांस्य

मूर्तियाँ और विष्णुपुर, लखीसराय, तेलहारा, नालंदा, रत्नगिरि (उड़ीसा), स्वातघाटी, चरसद्दा और तख्त-ए-बाही (पाकिस्तान) तथा सदर-ए-बहलोल से प्राप्त मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। एक गैलरी में बुद्ध के जीवन की खासकर उनके ज्ञान प्राप्ति के बाद की घटनाओं तथा विभिन्न मुद्राओं में पाई गयी मथुरा और गांधार कला की मूर्तियों का प्रदर्शन किया गया है। विष्णुपुर से प्राप्त बुद्ध की वह मूर्ति दिखी, जो भूमिस्पर्श मुद्रा में है। अंगुलियों से भूमि को स्पर्श करने वाली यह मुद्रा एक सुन्दर प्रतीक है। मुझे ऐसा लगता है बुद्ध को इस पृथ्वी को बचाने की चिंता है। ऊपरी तल पर दीदारगंज की यक्षिणी की मूर्ति है। मौर्यकालीन पालिश और मौर्य के बाद के भारत की लोकधर्मिता ने इसे अद्भुत कलाकृति में बदल दिया है।

चौथे दिन पटना से बस चल पड़ी है वैशाली की ओर। चलती हुई बस जीवन का रूपक भी है। इससे पूरी दुनिया दिखती है। फिर एक न एक क्षण में यात्रा को समाप्त होना ही होता है। आगे हाजीपुर है जहाँ का छोटा मीठा केला बहुत मशहूर है। घरों के आस-पास केले के ढेर सारे पेड़ हैं। आम के बगीचे भी बहुत हैं। बौद्ध साहित्य में आम्रवृक्षों का वर्णन बहुत हुआ है। वैशाली 1972 में मुजफ्फरपुर से अलग होकर एक नया जिला बना। इस जिले का मुख्यालय हाजीपुर है। भगवान बुद्ध के समय सोलह महाजनपदों में वैशाली का स्थान मगध के समान महत्त्वपूर्ण था। कहा जाता है कि वैशाली वह स्थान है, जहाँ बुद्ध ने अपने निर्वाण से पहले अपना अंतिम उपदेश दिया था। बताया गया कि यह स्तूप विश्वशांति स्तूप के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ स्थित अशोक स्तंभ भी काफी आकर्षक है। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद वैशाली में दूसरी बौद्ध परिषद आयोजित की गई थी। हिन्दी के महत्त्वपूर्ण कवि मदन कश्यप यहाँ मिलते हैं। इनका गाँव इसी क्षेत्र में है। वैशाली स्तूप के बाद हम सभी 'वासोकुंड' जाते हैं, जो महावीर स्वामी का जन्म स्थान है। चारों ओर शांति। संगमरमर का भव्य जैन मंदिर। यहाँ कुछ क्षण चुपचाप बैठने का मन करता है। हम आगे केसरिया की ओर बढ़ते हैं। केसरिया स्तूप एक प्राचीन बौद्ध स्तूप है, जो बिहार के पूर्वी चम्पारण जिले के केसरिया गाँव में स्थित है। अनुमान है कि इसका निर्माण ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में प्रारंभ हुआ था। यहाँ बिहार विधान परिषद के सदस्य प्रो. वीरेन्द्र नारायण यादव क्षेत्रीय लोगों के साथ हमारा स्वागत करते हैं। केसरिया स्तूप की ऊँचाई आज भी 104 फिट है, जबकि इंडोनोसिया स्थित विश्वप्रसिद्ध बोरोबदुर बौद्धस्तूप की ऊँचाई 103 फिट है।

चरथ भिक्खवे की यह यात्रा वैशाली, केसरिया होते हुए पाँचवें दिन बुद्ध की परिनिर्वाण स्थली कुशीनगर पहुँची। कुशीनगर वह प्रसिद्ध स्थल है, जहाँ बूंद समुद्र में मिल गई, जहाँ

प्रकाश महाप्रकाश में विलीन हो गया, जहाँ मृत्यु मृत्यु न होकर महापरिनिर्वाण हो गई। सबेरे सबसे पहले माथाकुँवर मंदिर। बताया गया कि सन् 1861 में जनरल कनिंघम को साढ़े दस फिट ऊँचे भूमिस्पर्श मुद्रा में एक बुद्ध प्रतिमा मिली थी। यह साफ बुद्ध की मूर्ति है फिर इसका नाम 'माथाकुँवर' कैसे पड़ा ? मालूम हुआ कि जब इस क्षेत्र में खुदाई हो रही थी तब खुदाई में कई देवी-देवताओं की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। उस समय एक मूर्ति का केवल माथा (सिर) दिखाई दिया और इसका नाम माथाकुँवर दे दिया गया।

माथाकुँवर मंदिर से दो किलोमीटर दूर रामाभार स्तूप है। यह वह जगह है जहाँ बुद्ध के निर्वाण के बाद उनका अंतिम संस्कार किया गया था और राख आठ महाजनपदों में बाँटी गई थी। देखने में यह अन्य स्तूपों से अलग चिपटा जैसा है। मैं अपने हाथ में लिए कमल-पुष्प को स्तूप पर टिका देता हूँ। रामाभार स्तूप से आटोरिक्शा लेकर सभी महापरिनिर्वाण मंदिर आते हैं। मंदिर के भीतर लेटी बुद्ध की विशाल मूर्ति। कितनी शान्ति ! कितनी शान्ति। कबीर भी इसी क्षेत्र के आस-पास 'ज्यों कि त्यों घर दीन्ही चदरिया' कहकर शरीर छोड़े थे। बुद्ध ने भी अपनी चादर यहीं धर दिया, लेकिन मैं तो कहूँगा कि बुद्ध ने जैसा पाया था, उससे अधिक निर्मल करके धर दिया। कुशीनगर में एक गोष्ठी भी रखी गई है, जिसमें गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुछ लोग आये हैं।

दोपहर के बाद हम बुद्ध के जन्मस्थान लुम्बिनी के लिए निकलते हैं। भारत-नेपाल की सीमा के लगभग चालीस किलोमीटर भीतर ओशो जेतवन, जहाँ हमें ठहरना है। भगवान बुद्ध की जन्मभूमि होने के कारण लुम्बिनी का ऐतिहासिक महत्त्व है। बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए यह सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थल है। कहा जाता है कि बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद प्रियदर्शी अशोक ने तथागत के जन्मस्थान की यात्रा की थी और यहाँ अनेक स्तूपों और विहारों को बनवाया था। अपनी यात्रा की स्मृति में अशोक ने एक स्तम्भ भी स्थापित किया था। आज उसके केवल भग्नावशेष बचे हुए हैं। बुद्ध का जन्म-स्थल आज मायादेवी मंदिर के रूप में ख्यात है। गेट के अंदर जाने पर सुन्दर उद्यान और वृक्षों से सजा पूरा क्षेत्र। बीच में सामने की ओर अंगुली उठाये बालक रूप वाले बुद्ध की मूर्ति विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है। मायादेवी मंदिर के बाहर और भीतर भग्नावशेष हैं। भीतर एक भाग वस्त्र से ढगा हुआ है। संभवतः वह मायादेवी के रूप में कल्पित हो।

लुम्बिनी के आगे की यात्रा श्रावस्ती की। बौद्ध धर्म के आठ महातीर्थों में श्रावस्ती भी एक है जो बौद्ध साहित्य में 'सावत्थी' नाम से विख्यात है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार भगवान

बुद्ध ने यहाँ सबसे अधिक 24 बार वर्षावास करके जनता को सद्धर्म का उपदेश दिया था। यहाँ जेतवन की एक रोचक कथा है जिसके अनुसार यहाँ के बड़े श्रेष्ठी अनाथपिण्डक ने पूरे उद्यान में स्वर्ण मुद्रायें बिछाकर इसे राजकुमार से लिया था। अनाथपिंडक के निमंत्रण पर ही महात्मा बुद्ध यहाँ आये थे। जातक निदान कथा के अनुसार अनाथपिंडक ने जेतवन के मध्य भाग में बुद्ध के रहने के लिए गंधकुटी का निर्माण कराया था और उसके चारों ओर 80 प्रमुख बौद्ध शिष्यों को रहने के लिए निवास-स्थान बनाये गये थे। बुद्धघोष की रचनाओं में भी यहाँ की निर्मित कुटीरों का वर्णन मिलता है, किन्तु वर्तमान में चारों ओर कुछ भग्नावशेष और बीच में गंधकुटी के प्रतीक के रूप में एक चबूतरा बचा हुआ है। जेतवन में एक तरफ बाँसों का घना झुरमुट है। प्रसंग मिलता है कि बुद्ध ने राजगीर में वेणुवन में विहार किया था। शायद इसी प्रतीक के रूप में जेतवन में भी वेणुवन बनाया गया है। जेतवन विहार के ठीक सामने एक विशाल वृक्ष है, जिसे आनंद बोधिवृक्ष कहा गया है। यह भी कहा जाता है कि यह वृक्ष भगवान बुद्ध के काल का ही है, किन्तु इसका कौन-सा प्रमाण है ? इस वृक्ष के बारे में अन्य कथायें भी प्रचलित हैं। इस जेतवन में घूमते हुए मन में यह विचार बार-बार आ रहा है कि कभी भगवान बुद्ध इन्हीं राहों से गुजरे होंगे, इन्हीं राहों पर उनके चरण पड़े होंगे। समय का अन्तराल कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता है। गहनतम भाव समय के अन्तराल को पाट देता है। मुझे इस समय सदानंद शाही की यह कविता याद आती है-

"मैं जिस धरती पर चलता हूँ
उस पर बुद्ध के कदमों की छाव है
जब तब लगता है
अभी-अभी
यहीं कहीं से गुजरे हैं बुद्ध
जब भी चलता हूँ
मेरे साथ-साथ चलते हैं बुद्ध ।।"

दोपहर के बाद हम थाई मंदिर देखने जाते हैं। फैले हुए विशाल क्षेत्र के बीच सर्वाधिक ऊँची स्वर्णमंडित सर्वकल्याण की मुद्रा में भगवान की मूर्ति। लौटते हुए हम अंगुलिमाल की गुफा देखते हैं।

श्रावस्ती से चलकर अयोध्या होते हुए कौशांबी की यात्रा सबसे लम्बी रही, लगभग 350 किलोमीटर। कौशांबी की गणना प्राचीन भारत के वैभवशाली नगरों में की जाती थी।

महात्मा बुद्ध के समय में वत्सराज उदयन की राजधानी के रूप में इसने अद्वितीय गौरव प्राप्त किया था। उदयन की गौरवपूर्ण गाथा से संस्कृत साहित्य भरा पड़ा है। कौशांबी के महान श्रेष्ठियों के निमंत्रण पर भगवान बुद्ध उस नगरी में दो बार आये थे, जहाँ उनके वर्षावास के निमित्त कई विशाल विहारों का निर्माण किया गया था। बौद्ध साहित्य में वर्णित प्रसिद्ध घोसिताराम इस नगर में स्थापित था, जिसके भग्नावशेष कौशांबी की अभी हाल खुदाई में प्राप्त हुए हैं। हम सभी सबसे पहले इसी घोसिताराम के अवशेष को देखने गये। यहाँ ज्ञात हुआ कि प्रयाग विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग द्वारा इसके खुदाई का कार्य चल रहा है। यह भी बताया गया कि यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ और अन्य महत्त्वपूर्ण दस्तावेज प्रयाग म्यूजियम तथा विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग में रखे गये हैं। गाइड ने बताया कि इस स्थान का महत्त्व ज्ञात न होने के कारण आस-पास के गाँवों के लोग यहाँ की ईंटों तथा अन्य बहुमूल्य चीजों को उठा ले गये। कौशांबी में आगे दूर तक जो टीला दिखाई दे रहा है उसे लोग उदयन के किले की चहारदीवारी बताते हैं। उदयन के इस प्राचीन प्रासाद को देखते हम यमुना के किनारे तक पहुँच जाते हैं। यमुना पूरी तरह शांत और गंभीर। इन ढाई हजार वर्षों की साक्षी रही है यह यमुना। इसने इस राज्य के गौरव को बहुत करीब से देखा, पर आज उदास है। मेरे मन में एक सवाल बार-बार आ रहा है कि राजगृह, श्रावस्ती से लेकर कौशांबी तक के जो केन्द्र बुद्ध के समय में इतने गौरवशाली थे, वे आज इतने श्रीहीन और उपेक्षित क्यों हैं ? कहाँ चली गई इनकी शोभा ? उदयन के किले का परकोटा देखते हुए अशोक स्तंभ के पास आते हैं। यहाँ भग्नावशेषों के बीच एक 22 फुट लम्बा स्तम्भ मिला है, जिसका शीर्ष भाग टूटकर नष्ट हो गया है। इसकी चमकदार पालिस से यह समझा जा सकता है कि यह अशोक के समय बनवाया गया होगा। इस स्थल पर एक पेड़ की छाँव के नीचे एक गोष्ठी आयोजित की गई। इसका संयोजन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. सन्तोष भदौरिया ने किया। इलाहाबाद के जाने-माने कवि हरिश्चन्द्र पाण्डेय के साथ विश्वविद्यालय के कई शोधछात्र एवं छात्रायें भी आये थे। यहाँ अभी खुदाई का काम चल ही रहा है। संभव है भविष्य में इतिहास में दबे कई नए पृष्ठ खुलेंगे। आज दोपहर बाद कौशांबी से सारनाथ जाना है, जहाँ से यात्रा शुरू की गई थी। यात्रा चाहे जहाँ तक की हो पर सबकी डोर तो घर से बंधी होती है। सभी में घर पहुँचने की जल्दी है। बस में सभी की सामान रखते हुए मैंने बस के खलासी से पूछा कि कैसा लगा ? उसने छूटते ही कहा कि दस दिन और होता तो अच्छा लगता।

और अब वापस सारनाथ- रात आने में देर हुई। आज का दिन सारनाथ के लिए आरक्षित है। तैयार होकर सभी ने मूलगंध कुटी विहार, अशोक स्तूप, सीता रसोई, वज्रविद्या संस्थान सहित यहाँ स्थित सभी मन्दिरों तथा महत्त्वपूर्ण स्थलों को देखा गया। दोपहर बाद जम्बूद्वीप श्रीलंका मंदिर में समापन गोष्ठी का ओयजन जिसकी अध्यक्षता डॉ. के. सुमेध थेरो ने तथा मुख्य अतिथि रहे यात्रा में शामिल जे. एन. यू. के सुधीर प्रताप सिंह।

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी
मो.नं.- 9451890720

संस्मरण, पंडित विद्यानिवास मिश्र

जो छूटता है वह नहीं मिलता

—प्रो. मंजुला चतुर्वेदी—

'एक स्मृति अभिशाप ही तो मिला है जीवन में, यही काफी है' कहने वाले पंडित विद्यानिवास मिश्र मेरे शोध निर्देशक होने के साथ-साथ मेरे अत्यंत आदरणीय एवं शुभचिंतक थे। प्रत्येक स्थिति में उनसे सलाह मशविरा किए बिना मैं कोई कार्य आगे नहीं बढ़ाती थी। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात तो मानो वही मेरे अभिभावक थे। उनके साथ बिताए गए एक-एक पल संस्मरण के रूप में मेरे साथ सुरक्षित हैं। आज जब संस्मरण लिखने की बात है तो मैं स्मृतियों के सैलाब में हूं। आसान नहीं है कुछ भी लिखना, क्योंकि हम स्मृतियों को जीने लगते हैं और समय व्यतीत होने लगता है। क्या लिखूं और क्या न लिखूं कितना कुछ तो है लिखने को। लिखने बैठ जाऊं तो संस्मरण की मेरी एक पुस्तक तैयार हो जाएगी। ललित निबंधकार के मन का लालित्य अद्भुत था, वह पारंपरिक होने के साथ-साथ अधुनातन भी थे, एक संपूर्ण व्यक्तित्व जिसमें जीवन रचना बसा हो।

मेरी मां एवं बड़ी बहनें लोक कला परंपरा की संवाहक थीं, मुझे भी विरासत में लोक कला का ज्ञान प्राप्त हुआ था। मां ने प्रारंभ से ही अपने साथ बैठा कर सांझी के चित्र, अहोई अष्टमी, दीपावली, हर छठ के भित्ति चित्र तथा विभिन्न प्रकार के चौक लगाने सिखाए थे, यह सब खेल-खेल में ही सीख लिया था। चित्र कर्म भी दैनिक कार्यों की ही भांति हुआ करता था।

मैं आगरा में बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में अध्यापन कर रही थी। एक बार आदरणीय पंडित विद्यानिवास मिश्र जी जब के. एम. इंस्टीट्यूट, आगरा के निदेशक थे, हमारे महाविद्यालय में किसी कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में आए जिसमें उनका परिचय मुझे ही प्रस्तुत करना था। एक पन्ने में दिए गए संक्षिप्त परिचय में अंतिम पंक्ति में लिखा था,

उद्देश्य - 'जीवन की मोमबत्ती को दोनों सिरों से जलाये रखना', यह पढ़कर मैं अभिभूत थी यह सोचते हुए कि अवश्य ही इस पंक्ति का आशय जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक छोरों को जीवन्त रखने से होगा, उस ताप से होगा जो जीवन को सही अर्थों में गुनगुना बनाये रखता है। यह सोच ही रही थी कि प्राचार्या जी का संदेश आया कि वे अपने आवास पर हैं, आ रही हैं, अतः मैं उनके ऑफिस में जाकर मुख्य अतिथि के पास बैठकर उनसे औपचारिक

वार्ता करूं। मैं सहर्ष आदरणीय विद्यानिवास जी के पास गई और अपना परिचय दिया, बताया कि मैं कला की प्राध्यापिका हूं। वार्ता के दौरान 'कला' सुनते ही उनके मुखमंडल की आभा द्विगुणित हुई, मुस्कुराते हुए उन्होंने सामयिक चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रजमंडल में पहले एक सांझी कला हुआ करती थी, लेकिन आजकल के लोग नहीं जानते, सब आधुनिक हो गए हैं। मैंने सहजता से हंसकर कहा कि मैं ये सब कुछ जानती हूं तथा बनाती भी हूं, मुझे मेरी मां ने सिखाया है। वे अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने ब्रजमंडल के 18 वें अधिवेशन (दिसंबर 1981) के समय जो वृंदावन में संपन्न होना था, जिसके वे स्वागताध्यक्ष थे, मुझे सांझी चित्रों की प्रदर्शनी लगाने के लिए कहा। उक्त कार्य हेतु उन्होंने मथुरा संग्रहालय से धनराशि भी उपलब्ध कराई। सांझी चित्रों की एक बड़ी प्रदर्शनी ललित कला विभाग, बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, आगरा की ओर से वृंदावन में आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी के समय ललित कला विभाग की विभागाध्यक्ष, कला प्रवक्ता मेरी बड़ी बहन, मैं तथा कुछ छात्राएं भी थी। प्रदर्शनी के समय मैंने देखा कि व्यवस्था करवाने में वे अत्यंत सजग और तत्पर थे। वे चाहते थे कि उद्घाटन के समय सांझी के कुछ लोकगीत गाए जाएं, थोड़ी देर में वे एक पुस्तक लेकर आए और उन्होंने गीत छांट कर देते हुए गाने का अनुरोध किया, गीत था, 'कहो री तुम कौन हो रही फुलवा बीनन हारी' यह गीत कृष्ण और राधा के सांझी खेलने से जुड़ा हुआ था। मैं आश्चर्यचकित थी ऐसा जुड़ाव देखकर। प्रदर्शनी अखंडानंद जी के आश्रम में एक मैदान में थी जहां मिट्टी के दीयों का आलोक मुख्य रूप से किया गया था। उद्घाटन के समय सांझी की आरती और दीपों के आलोक में उनके मुखमंडल की प्रसन्नता देखने लायक थी, इससे मुझे समझ में आया कि लोक और लोक जीवन से उनका कितना गहरा नाता था, वह मुस्कान अविस्मरणीय है। स्वागताध्यक्ष के रूप में उनका भाषण बहुत प्रभावशाली था। राधा कृष्ण तथा ब्रजमंडल से उनका आत्मिक जुड़ाव और रागात्मकता की मेरी समझ उस समय ही विकसित हुई। सांझी चित्रों के बहाने से तथा वृंदावन में दो दिन साथ रहने से मैं उनके समीप आ गई, यों साहित्यकारों की दुनिया में भी मेरा प्रवेश हुआ। वृंदावन से लौट कर सांझी चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन के.एम. इंस्टीट्यूट की कला दीर्घा में भी हुआ, जिसका उद्घाटन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अध्यक्षा माधुरी बेन शाह ने किया। प्रत्येक आयोजन के समय कुछ न कुछ मुझे उनसे सीखने को मिलता और मेरी व्यावहारिक दृष्टि विकसित होती।

बड़ी बहन के विवाह (फरवरी 1982) के अवसर पर वह प्रथम बार मेरे घर आए और मेरी मां से मिले। मेरे घर में जगह-जगह चौक पुरे हुए थे और भित्तियों पर लोक कलाकृतियां

अंकित थी। आदरणीय मिश्र जी ने उन्हें सराहा और मुझे विवाह के पश्चात मिलने को कहा। मिलने पर उन्होंने मुझे लोक कला, लोक साहित्य एवं सस्कृति विषय लेकर अभिप्रायों पर अंतर्विषयी शोध करने के लिए प्रेरित किया जिसे मैंने उनके निर्देशन में ही के.एम. इंस्टीट्यूट से पूर्ण किया। शोध के समय लोक जीवन और जीवन को देखने की मेरी दृष्टि उनके सान्निध्य में अत्यधिक विकसित हुई। कभी नाराज भी हुए तो बाद में एक बार फोन जरूर कर लेते यह बताने के लिए कि किस कारण से उन्होंने नाराजगी व्यक्त की थी। रूठे हुए को मनाना उन्हें अच्छी तरह आता था। अपनी गलती या त्रुटि होने पर स्वयं खेद भी व्यक्त करते थे, लिखकर या बोलकर। मैंने यह भी देखा कि कैसे वे अपने छात्र-छात्राओं से सदैव जुड़े रहते और उनके भविष्य के प्रति चिंतित भी। अपने छात्रों का धड़का खोलने की भी उनकी आदत थी। इससे जुड़े न जाने कितने संदर्भ हैं। एक बार राष्ट्रीय संग्रहालय इलाहाबाद में रस पर उनकी व्याख्यान शृंखला चल रही थी, उन्होंने मुझे भी आने को कहा, मैं ललित कला विभाग, वाराणसी में व्यस्तता के कारण नहीं जा पाई तो अंतिम दिन उन्होंने सुबह से ही मुझे फोन करना प्रारंभ किया और इलाहाबाद पहुंचने का आदेश दिया। मैं बस से इलहाबाद जा रही थी कि बीच में कई बार उन्होंने फोन पर यह जानकारी ली कि मैं कहां तक पहुंची। उनका अद्भुत व्याख्यान प्रारंभ हुआ जिसे सुनने के लिए इलाहाबाद के विभिन्न विषयों के वरिष्ठ विद्वतजन उपस्थित थे और हाल खचाखच भरा हुआ था। उनके व्याख्यान तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी की टिप्पणियों के पश्चात जब संयोजक ने पूछा की कोई प्रश्न, तब सभी शांत थे। अचानक आदरणीय मिश्र जी ने कहा कि इस विषय पर अब प्रोफेसर मंजुला चतुर्वेदी कुछ बोलेंगी। मेरे काटो तो खून नहीं, ऐसा अप्रत्याशित आदेश। खैर मैं कुछ तो बोली। बाद में जब मैंने उनसे पूछा कि ऐसा आपने अचानक क्यों किया तो मुस्कुरा कर बोले कि मैंने तो तुम्हारा धड़का खोला था, तुम ठीक बोली। ऐसे थे हमारे गुरुजी यानि मेरे सर।

मिश्र जी आगरा में कभी-कभी मेरे घर आते, मेरी मां और पिताजी से मिलने। मां के साथ लोकगीतों और चित्रों से संबंधित वार्ताएं भी होती। कई बार ब्रज भाषा के कठिन शब्दों पर अथवा उनकी उत्पत्ति पर भी चर्चा होती। मुझे स्मृत है, एक बार नृत्य के संदर्भ में मैंने लहंगा फरिया शब्द का प्रयोग किया तो उन्होंने फरिया का अर्थ पूछा और जब मैंने बड़ी चुन्नी बताया तो उन्होंने कहा कि साड़ी को फाड़ कर बनाई जाती होगी, अतः इसे फरिया कहा गया। इसके पश्चात आगरा विश्वविद्यालय से 'ब्रज के लोकमंगल का संसार' नाम से पुस्तक भी प्रकाशित हुई। मूल पांडुलिपि पंडित श्री नारायण चतुर्वेदी की बहन शकुंतला देवी की थी जिसे मिश्र जी ने मेरी बड़ी बहन को सौंपा जो उस समय के. एम. इंस्टीट्यूट से

डी. लिट. कर रही थी। बड़ी बहन ने मां, मौसी और मेरे सहयोग से उसे पुस्तक रूप देते हुए पूर्ण किया। उस पुस्तक में बने हुए समस्त लोकचित्र मेरे ही थे, किंतु मेरा नाम कहीं नहीं दिया गया था जिसके कारण मैं तनिक उदास थी। पुस्तक प्रकाशन के बाद जब मैं किसी अन्य कार्य से मिश्र जी के घर गई तो मेरे चेहरे की उदासी देखकर उन्होंने स्वयं ही कहा कि तुम्हारा नाम नहीं छपा है, कोई बात नहीं, बहुत से काम बिना नाम के भी किए जाते हैं। और किताबें लिखना तब छप जाएगा नाम। यहां यह ध्यातव्य है कि भारतीय लघु चित्र शैलियों में अथवा अन्य पारंपरिक कला रूपों में तथा लोक कलाओं में कलाकारों के नाम दर्ज नहीं किए जाते हैं और इसे ही आनंद कुमार स्वामी अहम् का विसर्जन मानते हैं, जो भारतीय कलाओं की सर्वोपरि धरोहर है।

शोध के समय उनके सान्निध्य में मैंने सामान्य व्यवहार तथा ज्ञान की न जाने कितनी बातें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सीखीं। जनवरी 1983 में मेरे दृश्य-चित्रों की प्रथम एकल चित्र प्रदर्शनी के एम इंस्टीट्यूट की कला दीर्घा में हुई जिसे आदरणीय ने बहुत अच्छी तरह से देखा तथा क्लोजिंग सेरेमनी में दोबारा आये और अपना विशिष्ट व्याख्यान भी दिया, जबकि यह कार्यक्रम अनायास ही हुआ था। 1984 में जब मैं कुल्लू मनाली से अपने दृश्य चित्रों की शृंखला तैयार करके लौटी और उन्हें पता चला तो एक दिन अचानक वे घर आए यह कहते हुए कि मैं आर. बी. मिश्रा के यहां जा रहा था, सोचा कि तुम्हारे नये चित्र देख लूं। मेरे घर के आगे ही प्रोफेसर आर. बी. मिश्रा का घर था।

मैं अपने 30-35 जल रंगीय दृश्यचित्र दिखा ही रही थी कि अचानक वे बोले मेरा पोर्ट्रेट बनाओ अभी। मैं असमंजस में थी किंतु तत्काल बगीचे में ही उनका पोर्ट्रेट बनाने बैठ गई, मां भी वहीं थीं। एक अच्छे मॉडल की भांति वे लगभग 25 से 30 मिनट बैठे रहे और मुस्कुराते रहे, मैं जल्दी-जल्दी चित्र बनाती गई कि अचानक वे उठ गए। यह दिन मेरे लिए अनुभव का था, अपनी परीक्षा का भी। वह मुस्कान वर्णन से परे है। चित्र मेरे ही पास है, जिसे मैंने द्रुत गति से बनाया था।

एक बार वे वाराणसी से आगरा विश्वविद्यालय किसी मौखिकी के लिए आए और मेरे घर भी आए। मेरी मां के आग्रह पर उस दिन उन्होंने घर पर ही विश्राम किया। रात्रि में उनकी व्यवस्थानुरूप फलाहार तैयार किया गया। टमाटर आलू की सब्जी में मटर भी साथ आ गई। मटर का दाना निकाल कर मुझे दिखाते हुए बोले यह तो अन्न है न, खैर दाना अंदर नहीं गया था, अन्य व्यवस्था की गई। मुझे अपनी भूल पर दुख हुआ। पंक्ति पावन ब्राह्मण चौके के

बाहर अन्न ग्रहण नहीं करते। खैर वे चुप रह गए कोई नाराजगी नहीं जताई। यह सब मेरी अज्ञानता वश हुआ।

उसी दिन रात में उन्होंने मेरे शोध की प्रगति देखने की इच्छा व्यक्त की, जिसे देखने के लिए वह पूर्व में पत्र लिखकर इच्छा व्यक्त कर चुके थे। उस अवधि में मैं अपने दो से अधिक अध्याय पूर्ण नहीं कर पाई थी, क्योंकि कविताएं लिखने में मन रम गया था, अतः कोई और उपाय समझ में न आने पर मैंने चुपचाप उस माह में लिखी गई अपनी 18 कविताएं उनके समक्ष रख दीं, यह कहते हुए कि आजकल मैं यही कर रही हूं। एक बार उन्होंने खामोश निगाहों से मेरी ओर देखा, फिर मेरी कविताएं पढ़ने लगे, लेकिन पढ़कर कुछ कहा नहीं। यही मेरे कार्य न करने की सजा थी। मैं प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक थी लेकिन पूछने का साहस नहीं था। मैं उस दिन डाँट से बच तो गई, कुछ कहा भी नहीं लेकिन (मौन) कोप भाजन का तो शिकार थी ही, मन में यही समझ रही थी कि सर बहुत नाराज हैं। मेरी इतनी हिम्मत नहीं थी कि मैं कविताओं पर प्रतिक्रिया जान सकूं।

मध्य रात्रि में उनकी पूजा के लिए मैं 3:30 बजे के करीब उठी और पूजा स्थल को झाड़ा पोंछा तथा पूजा की व्यवस्था बनाई। वे साढे तीन, चार बजे से एक डेढ़ घंटे तक माला का जाप करते थे। मैंने कहा भी बिना नहाए कैसी पूजा, उन्होंने बताया कि जाप किया जा सकता है। पूजा के पश्चात प्रातः काल नहा धोकर वे त्रिवेंद्रम जाने हेतु आगरा एयरपोर्ट के लिए रवाना हुए, लेकिन एक गहरा मौन था जिसके कारण मैं उदास भी थी। दिनचर्या प्रारंभ हो गई मेरी भी लेकिन दो दिन बाद ही पोस्टमैन ने आकर एक अंतर्देशीय पत्र दिया। पत्र पर सर का नाम अंकित देखकर मैं चौंक गई। उन्होंने त्रिवेंद्रम पहुंचते ही एक पत्र मेरे नाम लिखा जो आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

पत्र में लिखा था

स्नेहाषीश,

मैंने तुम्हारी नींद चौपट की और तुम्हें इतना कष्ट दिया, पर तुम्हारी दो कविताएं मुझे अच्छी लगीं। तुम्हें कविता लिखनी चाहिए। इतना ही है कि जब खीझ हो तब थोड़ा रुक कर लिखना चाहिए, जब दर्द हो तो दर्द में ही लिखना चाहिए ।

तुम्हारे यहां शायद मेरा गमछा छूट गया। फिर शायद मैं आगरा 22-23 मार्च के आसपास आऊंगा, ले लूंगा। इतनी यात्राओं में यही होता है चीजें छूटती रहती हैं जिंदगी का एक हिस्सा छूटता रहता है

जो छूटता है वह वापिस नहीं मिलता
मिलता भी है
तो वही नहीं मिलता
जो छूटा था, कुछ और ही मिलता है
और तब तक
बहुत कुछ छूट गया रहता है।

शमिति
शुभाकांक्षी
विद्यानिवास

यह पत्र मेरी अनमोल धरोहर है, इस पर जितना लिखा जाए उतना कम है। वाराणसी आने पर मैंने उनसे पूछा कि कौन सी दो कविताएं आपको अच्छी लगीं, तो उन्होंने बताया कि जो कविता 'दमन चक्र जारी है 'तुमने प्राचार्या के लिए लिखी थी, वह खीझ भरी हुई थी, थोड़ा रुक कर लिखनी चाहिए थी। दूसरी कविता जो उन्हें अच्छी लगी थी उसका शीर्षक था 'काला सूरज' वह मैंने असम समस्या पर लिखी थी, उन्होंने सुझाव दिया कि उसका शीर्षक 'काला सूरज' नहीं 'संवराया सूरज' होना चाहिए, क्योंकि सूरज काला नहीं होता। इस कविता की प्रतीकात्मकता उन्हें अच्छी लगी थी।

इसके पश्चात ही मैंने नियमित कविताएं लिखना प्रारंभ किया जिसका प्रथम संकलन उनके सामने ही प्रकाशित हुआ और उन्होंने उसकी भूमिका भी बड़े मनोयोग से लिखी। यह 'अंतरा' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली से 2003 में प्रकाशित हुई। पुस्तक मैंने उन्हें ही समर्पित की।

मेरे वाराणसी आने पर वे जब भी पक्का महाल में गोपाल मंदिर जाते, कुछ देर मेरे यहां रुकते, मेरे चित्र देखते कविताएं सुनते। उन्होंने अपनी भी अनेकों कविताएं मेरे कक्ष में ही बैठकर लिखीं जो बाद में 'उत्तर गीत गोविंद' शीर्षक से प्रकाशित हुईं ।

इन कविताओं की मूल पांडुलिपि उन्होंने मुझे सौंपी।

मैंने लेने से इनकार किया और कहा कि पुस्तक है मेरे पास, अब इसका मैं क्या करूंगी तो उन्होंने कहा कि नहीं यह तुम रखो। आज भी मेरे पास पांडुलिपि सुरक्षित है। आज उसका महत्व मैं समझती हूं तब तनिक भी नहीं समझ पाई थी। एक बार सीढ़ियों से उतरते हुए कहने लगे, 'कि राह सिर्फ ऊपर जाने की नहीं होती नीचे आने की भी होती है।' मैं अवाक सुनती रह गई।

कई बार एयरपोर्ट से आते समय वहीं से मुझे फोन करके पूछते कि कुछ नया चित्र बना ? कुछ नया लिखा ? और यदि मैं हां कहती तो घर आकर पहले चित्रों को देखते और सराहना करते हुए चर्चा भी करते। एक बार एयरपोर्ट से उनका फोन आया, मैं नहीं उठा पाई और बाद में भी ध्यान नहीं दिया, तो उन्होंने भरपूर नाराजगी व्यक्त की। उसके बाद मैंने उनके फोन की रिंगटोन बदल दी जिसमें एक गीत लगाया 'होसाना-होसाना', इसके बाद कभी भी उनका कोई कॉल मिस नहीं हुआ। फोन की घंटी बजते ही मेरे साथ रह रही लड़कियां भी समझ जातीं थीं कि सर का फोन है और सभी होसाना होसाना करने लगतीं थीं। मेरे घर आने पर कभी वे खामोश बैठे रहते थे, कभी कला इतिहास जैसे विषयों पर गंभीर चर्चा भी होती। मुझे आश्चर्य होता था उनकी कला इतिहास की समझ पर, विशेष रूप से यूरोप के आधुनिक कला इतिहास पर। आधुनिक कला की भी उनकी दृष्टि अद्भुत थी। अमूर्त चित्रों की भी वे सराहना करते, पिकासो और मोदिग्लयानी आदि के चित्रों की चर्चा भी। उन्होंने मुझे यूरोपीय चित्रकला एवं सौंदर्य शास्त्र आदि की कई पुस्तकें भेंट की। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ आर्टिस्ट देते समय उन्होंने मुखपृष्ठ पर यह भी लिखा कि 'मंजुला का नाम भी ऐसे संदर्भ ग्रंथ में आए।' अपने छात्रों के लिए ऐसी अद्भुत कामना अनमोल उपहार के रूप में मेरे पास सुरक्षित है। वे जिससे जुड़े सहजता से जुड़े और उसे अपना माना। मेरे यहां आने पर वह मेरी भतीजियों के साथ भी दुलार से बात करते। एक बार मैंने अपनी भतीजी के विषय में उनसे शिकायत की कि आप इसे प्यार कर रहे हैं लेकिन यह मन लगाकर पढ़ती नहीं है। इस पर उन्होंने कहा कि यह ललित कलाओं की छात्रा है और तुमने इसे कॉमर्स दिला रखी है। मुझे तभी पता चला कि मेरी अनुपस्थिति में वह अपने कंप्यूटर के बने चित्र उन्हें दिखाती थी। उनके कहने के पश्चात ही मैंने उसे भी फाइन आर्ट में प्रवेश दिलवाया। घर में आने वाली साहित्यिक पत्रिकाएं वह पढ़ती। जब मुझे पता चला कि वह नोएडा में अपने घर साहित्य अमृत की प्रति मंगाने लगी है तो मुझे लगा कि यह सर के ही दिये संस्कार हैं और उनका आशीर्वाद है। कैसे वे युवा पीढ़ी में भी साहित्यिक अभिरुचि जागृत करते थे। वाराणसी में होने वाली चित्र प्रदर्शनियों में वे अवश्य आते और भरपूर निगाहों से देखते और चर्चा करते।

एक बार जब वे सांसद थे, मैं उनके आवास परिस्पन्द में गई, वे कुछ रुपए किसी संस्था के नाम दे रहे थे। मैंने भी उनसे कहा कि मुझे ₹200000 दे दीजिए मैं आर्ट गैलरी खोलूंगी तो उन्होंने हां कह दी, अगले दिन फोन करके कहा कि चार लाख दे दूंगा और जब पैसे सैंक्शन हुए तो उन्होंने ललित कला विभाग काशी विद्यापीठ की कला दीर्घा के लिए 12 लाख रुपए दिए जिसे सुनकर मैं चौंक गई। वह बहुत प्रसन्न थे, भूमि पूजन समारोह में भी आये किंतु

उनके न रहने पर वह पैसा पूरा रिलीज नहीं हो पाया और इस शहर ने एक अच्छी कला दीर्घा जो उनके सहयोग से बनती, उसे खो दिया। कितनी ही स्मृतियां हैं, कुछ चश्मे से जुड़ी, कुछ सैंडिल से जुड़ी, कुछ स्फटिक माला से जुड़ी, कुछ मानवीय व्यवहारों की चर्चा पर आधारित और कुछ मूर्खों से संबंधित ।

एक ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व जो साहित्यकार के रूप में जाना गया किंतु जिसका कला और संगीत (लोक एवं शास्त्रीय) का ज्ञान अद्भुत था। उनकी मृत्यु मेरे लिए एक बहुत बड़ा आघात थी जिसे सह पाना आसान नहीं था।

उनके जाने के बाद मैंने कई कविताएं उनके लिए लिखीं जिसमें से कुछ मेरे दूसरे संग्रह 'एक कोना राग का' में प्रकाशित भी हुईं। मेरे फोन में दोबारा होसाना होसाना की ध्वनि न बज सकी, फोन बदलने पर ही उनका नाम मोबाइल से हटा। बसंत का आयोजन करके बीच राह में ही वह हम सबको छोड़ कर चले गए। न जाने कितना कुछ कहने सुनने और करने से छूट गया और छूट गया कुछ करने का प्रेरणा स्रोत भी।

सचमुच जो छूटता है वह नहीं मिलता,
वे मेरे साथ हैं किंतु उस रूप में नहीं
और जिस रूप में हैं उसमें पुनः पुनः जीना
कितना कष्टप्रद है यह मेरी आंखों से कोई पूछे
शायद संस्मरण आंसुओं से ही लिखे जाते हैं

आंसूनामा ही होते हैं, कम से कम पंडित विद्यानिवास मिश्र के संदर्भ में। उन्हीं की एक उक्ति से मैं अपने शब्दों को अभी ठहराव देना चाहती हूं कि, 'विश्व आत्मीयता का विस्तार है'।

कला शिक्षक, लेखक,
कलाकार एवं कला समीक्षक
वाराणसी

रस्-फगस्(आर्य-अवलोकितेश्वर) का तीर्थ-विवरण एवं अभिसमय[1]

—हिन्दी-अनुवादक- टी. आर. शाशनी—

मैं गुरु की वन्दना करता हूँ।

रस्-फगस्(आर्यावलोकितेश्वर) के तीर्थ-विवरण के बारे में थोड़े-से शब्दों में कहा जा रहा है– पूर्व में, सभी बुद्धों ने मन्त्रणा कर शान्ति, पुष्टि, वश्य तथा रौद्र (कर्मों) के आधार पर प्रत्येक विनेयजन का हित करने की विशेषताओं को निश्चित किया। तदनुसार, पूर्व में आर्यावलोकितेश्वर *रस्-फगस्* घाटी की कन्दरा में स्थित झील के बीच में वर्षों तक विराजमान रहे।

एक समय गाँव का सत्कर्मी गडरिया भेड़-बकरियों को जंगल में चराकर प्रतिदिन की भांति वापस ले आया। जब संध्या काल में ग्रामवासी बकरियों का दूध दूहने लगे, तब दूध न निकलने पर ग्रामवासियों ने गड़रिये से पूछा– क्या आपने जंगल में बकरियों का दूध दुहा? ऐसा क्यों किया इत्यादि प्रश्न किया ? उस समय गडरिया को कुछ समझ में नहीं आया, उसने सोचा कि मैंने तो दूध दुहा नहीं, फिर ऐसा कैसे हुआ।

---

1. यह लेख मूल रूप में भोटी-भाषा में प्रकाशित है। तोदघाटी के निवासी श्री ठाकुर अमरचन्द्र जो ब्रिटिश शासन-काल के दौरान लाहौल तहसील में महा तहसीलदार के पद पर नियुक्त थे। उस समय वह लाहौल के तोदघाटी का शासक भी थे। उन्होंने वर्ष 1906 में लोक-कल्याण हेतु लाहुल घाटी के त्रिलोकनाथ क्षेत्र में स्थित आर्य-अवलोकितेश्वर तीर्थ की महिमा को उजागर करने की दृष्टि से लकड़ी का ब्लॉक बनवाकर इस लेख का प्रकाशन किया था। तोदघाटी के स्थानीय लोगों के अनुसार यह काष्ठोत्कीर्ण ब्लॉक सम्प्रति खंगसर नामक गाँव में श्री ठाकुर अमरचन्द्र के महलनुमा मकान (=खर) में सुरक्षित है। लाहुल घाटी के त्रिलोकनाथ गाँव में स्थित रे-*फगस्* नामक आर्यावलोकितेश्वर का यह महातीर्थ सनातन एवं बौद्ध दोनों अनुयायियों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। सनातनी अनुयायियों में यह तीर्थ त्रिलोकनाथ मन्दिर के रूप में अधिक प्रचलित है। इस महातीर्थ में देश-विदेश के बौद्ध अनुयायी, सनातनी, अन्य धर्मों के अनुयायी तथा स्थानीय निवासी अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति हेतु वर्षभर दर्शनार्थ आते रहते हैं। इस महातीर्थ की महिमा देश-विदेश में विख्यात है। हिन्दी भाषी श्रद्धालुजनों को इस महातीर्थ की महिमा की जानकारी देने के लिए इस मूल तीर्थ-लेख का हिन्दी में अनुवाद किया गया है।

फिर एक दिन गडरिया उसी जंगल में भेड़-बकरियों को आगे भेजकर, स्वयं पीछे छिपकर देखने लगा। ज्यों ही बकरियाँ झील के समीप पहुँचीं, तभी झील में से सात सफेद वर्ण वाले आदमी बाहर निकल कर आये और सभी ने बकरियों का दूध पीना शुरू कर दिया। इसे देखकर जैसे ही वह गडरिया दौड़ता हुआ आगे बढ़ा, तब उस समय झील के समीप उसने छह भुजाओं से युक्त एक श्वेत वर्ण वाले व्यक्ति को विराजमान देखा और अन्य सभी श्वेत वर्ण वाले व्यक्ति झील में लुप्त हो गये। गडरिया ने छह भुजाओं से युक्त उस श्वेत वर्ण वाले व्यक्ति से पूछा कि आपने मेरी बकरियों का दूध क्यों पिया ? श्वेत वर्ण वाले व्यक्ति अर्थात् आर्यावलोकितेश्वर ने कहा– बकरियों के दूध पीने के बदले में तुम मुझे गाँव लेकर चलो। यदि पीछे से तरह-तरह की डरावनी आवाज़ें सुनायी दें, तब भी तुम पीछे मुड़कर मत देखना और यथासंभव तेज कदमों से चलते रहना। उस श्वेत वर्ण वाले व्यक्ति के निर्देशानुसार सत्कर्मी गडरिया उसे पीठ में लेकर गाँव की ओर चलना प्रारम्भ किया। जब मार्ग में उसे कुत्तों का भौंकना, घनघोर गर्जना आदि के रूप में तरह-तरह की डरावनी आवाजें सुनायी देने लगीं, तब सत्कर्मी गडरिया भयभीत हो गया और वह अपने आपको पीछे मुड़कर देखने से रोक नहीं सका। जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो पाया कि आर्य-अवलोकितेश्वर के सभी भ्रातृगण पीछे से कतारबद्ध होकर पधार रहे हैं, किन्तु मना करने के बावजूद उसके पीछे मुड़कर देखने से अर्थात् अमंगल हो जाने से, तत्क्षण आर्य अवलोकितेश्वर के सभी भ्रातृगण वापस लौट गये।

उस दौरान नदी के उस पार मार्ग में स्थित पाषाण के नीचे एक विषैला सर्प मार्ग अवरुद्ध कर आने-जाने वाले लोगों का भक्षण करता था, इसलिए उस मार्ग से जाना संभव नहीं था, किन्तु उसी समय आर्यावलोकितेश्वर के प्रवास स्थल दुग्ध-झील के फटने से वह विषैला सर्प भी उसी पाषाण में विलीन हो गया। आज भी मार्ग के ऊपरी हिस्से में उस स्थान को सभी लोग देख सकते हैं तथा आर्यावलोकितेश्वर के प्रवास स्थल के जल-प्रपात को भी दूध की भाँति गिरता हुआ देख सकते हैं।

इस तरह, उस समय सत्कर्मी गडरिया के द्वारा आर्यावलोकितेश्वर जगन्नाथ को पीठ में धारण कर गाँव में लाया गया और उसी समय यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, देव आदि अमानुषों ने प्रासाद का छत, दीवार, स्तम्भ, कृकाट(=खम्भे और शहतीर के बीच में लगने वाला लकड़ी), दरवाज़े का दायां और बायां भाग, मुख्य-द्वार का दहलीज़, आसन आदि सभी निर्माण-कार्य एक ही दिन में पूर्ण कर दिया। इस प्रासाद के लिए प्रतिष्ठा-विधि(रब-नस्) की

भी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि इस प्रासाद का निर्माण यक्ष, गन्धर्व आदि अमानुषों ने अनायास रूप से कर दिया था।

इस प्रकार की विशिष्टता से युक्त यह स्वयंभू तीर्थ जो सभी बुद्धों के एकत्रित होने का क्षेत्र है, सभी सत्त्वों का परम शरण-दाता है जो मुख्यतः प्रत्यन्त प्रदेशवासियों(मोन-वासियों) के मुख-स्तम्भन(ख-नोन्) हेतु प्रतिष्ठित है। भारत, तिब्बत और मोन(ग्र्या, बोद् तथा मोन) इन तीन देशों के भाग्यशाली निवासियों के पाप के आवरण को कम करने के लिए इस तीर्थ की स्थापना हुई है। जैसे तिब्बत की राजधानी ल्हासा स्थित महाविहार में शाक्यमुनि बुद्ध(ल्हासा-जोवो) की ओर मुख कर बैठने पर स्वतः ज्ञान-वायु की अविच्छिन्न धारा बहती है, वैसे ही, इस तीर्थ की भी महिमा है।

एक समय जब *ञुङ्-ती*(रटांग-जोत के उस पार स्थित भूभाग को स्थानीय बोली में ञुङ्-ती कहा जाता है) प्रदेश से कुछ हमलावर सेना लेकर आक्रमण हेतु *गर-जा फगस्-पा* पहुँचे, तब हमलावर सैनिकों के द्वारा आर्यावलोकितेश्वर की मूर्त्ति को हिला न पाने के कारण मूर्त्ति को तलवार से वार कर तोड़ने की कोशिश की गयी, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। आज भी मूर्त्ति की जंघा में नीला चिह्न देख सकते हैं।

इस प्रकार, (मना करने के बावजूद पीछे मुड़कर देखने के कारण) "बुद्ध-काय का सजीव रूप (अर्थात् आर्यावलोकितेश्वर) संगमरमर-पत्थर में परिवर्तित हो गया।" (तब से यह संगमरमर की मूर्त्ति श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ मन्दिर में स्थापित है।)

इस तीर्थ-स्थान में जो भी व्यक्ति प्रणिधान(प्रार्थना) करेगा, उसे शीघ्र फल की प्राप्ति होगी, इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।

अन्य तीर्थ-स्थानों में एक सौ पताकाओं को फहराने की अपेक्षा, इस तीर्थ-स्थान में एक पताका फहराने की महिमा अधिक है।

अन्य तीर्थ-स्थानों में एक सौ गणचक्र(छोग) की पूजा कराने की अपेक्षा, इस तीर्थ-स्थान में एक गणचक्र की पूजा कराने की महिमा अधिक है।

अन्य तीर्थ-स्थानों में पुण्य-सञ्चयार्थ एक सौ बार प्रदक्षिणा करने की अपेक्षा, इस तीर्थ-स्थान में एक बार प्रदक्षिणा करने की महिमा अधिक है।

अन्य तीर्थ-स्थानों में एक वर्ष साधना करने की अपेक्षा, इस तीर्थ-स्थान में तीन दिन साधना करना श्रेयस्कर है।

यह तीर्थ-स्थान पोतलक पर्वत(आर्यावलोकितेश्वर का बुद्ध-क्षेत्र) के समान पवित्र है।

आर्यावलोकितेश्वर की भावना-विधि–

(मन्त्र के रूप में आर्य-अवलोकितेश्वर का स्वरूप "ह्रीः" है ।) ह्रीः के ऊपर प्रकाशमान पोतलक-क्षेत्र, उसके ऊपर कमल, उसके ऊपर सूर्य, उसके ऊपर चन्द्रमा, उसके ऊपर जगन्नाथ (अर्थात् आर्यावलोकितेश्वर) प्रत्यालीढ-मुद्रा में विराजमान हैं, जो सदैव सत्त्वों के हित के लिए तत्पर रहने के लक्षण हैं, (ऐसी भावना करनी है)।

(इसी क्रम में इस रूप में भावना करना है–) दायीं ओर पहले हाथ में धारण की हुई स्फटिक की माला– अशेष सत्त्वों के नायक होने के लक्षण हैं। आकाश की ओर इंगित दायीं ओर की दूसरे हाथ की तर्जनी– आठ प्रकार के सुर-असुरों (अर्थात् देव, नाग, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, गरुड़, महोरग आदि) को दास बनाने के लक्षण हैं। दायीं ओर की तीसरे हाथ की वरदमुद्रा– षड्गतियों के पाप-आवरण का शोधन करने के लक्षण हैं।

बायीं ओर की पहले हाथ में धारण किये हुए नाग-पाश– त्रिविष अर्थात् राग, द्वेष और मोह रूपी क्लेशों के नाश करने के लक्षण हैं। बायीं ओर दूसरे हाथ में धारण किये हुए महाबोधिवृक्ष– अविच्छिन्न करुणावान् होने के लक्षण हैं। बायीं ओर तीसरे हाथ में धारण किये हुए कमण्डलु– अभिलषित इच्छाओं की पूर्ति करने के लक्षण हैं।

श्वेत काय-वर्ण से रश्मि का स्फुरण होना– तीनों धातुओं अर्थात् कामधातु, रूपधातु तथा अरूपधातु के सत्त्वों को मुक्त करने के लक्षण हैं। उष्णीष में अभिताभ (बुद्ध) का विराजमान होना– आयु एवं पुण्य में वृद्धि करने के लक्षण हैं।

(मैं ऐसे) आर्यावलोकितेश्वर की वन्दना एवं स्तुति करता हूँ॥ **ॐ मणिपद्मे हूँ**॥

मुझे तथा समस्त सत्त्वों को इस जन्म एवं अगले जन्मों में आपसे अलग न होने के लिए अधिष्ठित करें।

"स्वचित्त की शून्यता से परिचित होकर, इन्द्रधनुष रूपी धर्मकाय को सिद्धकर, आर्यावलोकितेश्वर आपसे अभिन्न हों।" (ऐसा प्रणिधान कर) **ॐ मणिपद्मे हूँ**– इस मन्त्र का अधिक से अधिक जाप करें।

इस तरह, आर्यावलोकितेश्वर की उद्भव-परम्परा तथा सन्तति-वाहक का अधिगम कर इस युगान्त अर्थात् कलियुग में ओडियान अनाभोग-सागर अर्थात् गुरु पद्मसंभव के द्वारा स्व-पर सहित समस्त सत्त्वों के हित सम्पन्न होते हैं। उपर्युक्त अभिसमय या अधिगम से युक्त होकर "**ॐ मणिपद्मे हूँ**" इस मणि-मन्त्र का बार-बार जाप करने से भाग्यवानों को अचिन्त्य पुण्य का लाभ मिलता है।

इस प्रकार, (लाहौल घाटी में स्थित) तीर्थों के लक्षण इस प्रकार से हैं– इस घाटी में चक्रसंवर का प्रासाद *डिल-बु-री*(घण्टा-पर्वत) **काय-स्वरूप** महातीर्थ है। घाटी के मध्य में *फगस्-पा रिन्पोछे*(महारत्न-आर्यावलोकितेश्वर) **वाक्-स्वरूप** महातीर्थ है। तथा *मर-गुल थङ्*(मरगुल मैदान) स्थित *दोर्जे-फगस्-मो छाग-डुग्-पा*(षड्भुज वज्रवाराही) **चित्त-स्वरूप** महातीर्थ है।

इन तीन महातीर्थों में से *फगस्-पा रिन्-पोछे* अर्थात् आर्यावलोकितेश्वर महातीर्थ की कोई तुलना नहीं है। आर्यावलोकितेश्वर प्रतिदिन नाना प्रकार के काय-वर्ण का प्रदर्शन करते हैं, जबकि उनका स्वरूप आभायुक्त श्वेतवर्ण हैं, तथा तेजस्वी एवं स्मित-वदन(मन्द हास-मुख) के रूप में विराजमान है।

इस प्रकार के विशिष्ट महातीर्थ में जो भी *मोन्-लम*(प्रणिधान) करते हैं, उन्हें शीघ्र इच्छित फल की प्राप्ति होती है। इस महातीर्थ में विपरीत प्रणिधान न करते हुए समस्त मातृ-तुल्य सत्त्वों के हित के लिए असीम बोधिचित्त को उत्पन्न कर प्रणिधान करना चाहिए। वन्दना एवं पूजना सहित परिक्रमा करने से इस जन्म की विघ्न-बाधाओं का निवारण होगा तथा आगामी जन्मों में बोधि की प्राप्ति होगी–ऐसा कहा गया है।

पन्द्रहवें प्रवर, *मिवङ्-छिमेद-दवा*(नरेन्द्र अमर चन्द) के आर्थिक सहयोग से
इस रचना-कार्य को पूर्ण किया गया।
***मि-फम* के द्वारा सम्पन्न काष्ठ-अक्षर-विन्यास की सार्थकता सिद्ध हों।**

।। भवतु सर्वमंगलम् ।।

सह आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो. नं. - 9415447466

मानक देवनागरी लिपि एवं हिंदी वर्तनी का मानकीकरण

—श्री भगवान पाण्डेय—

किसी भी भाषा के विकास के लिए व्याकरण, वर्ण, लिपि एवं वर्तनी की एकरूपता की आवश्यकता होती है। विद्वानों के बीच हिंदी वर्तनी के संबंध में एकरूपता नहीं थी एवं अलग-अलग भषाविद् अपने-अपने विचार प्रतिपादित किया करते थे, जिससे आमजन में संशय की स्थिति बनी रहती थी। जैसा कि वर्तमान में ज्योतिषशास्त्र के संबंध में देखने-सुनने में आता है कि अमुक त्योहार अमुक तिथि को न मनाकर अमुक तिथि को मनाया जाएगा एवं ज्योतिषाचार्य अपने-अपने तर्क देते हैं। इसी प्रकार हिंदी भाषा के विद्वान भी अपना मत प्रकट करते थे कि शिरोरेखा का प्रयोग किया जाय अथवा न किया जाय और कुछ स्वर तथा व्यंजन वर्णों को अलग-अलग रूपों में लिखा करते थे। ऐसी ही हिन्दी की वर्तनी के विविध पहलुओं को लेकर 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ही विविध प्रयास होते रहे हैं। इसी तारतम्य में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा वर्ष 2003 में देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के लिए अखिल भारतीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संगोष्ठी में **मानक हिंदी वर्तनी** के लिए नियम निर्धारित किए गए थे, जिसका संशोधित संस्करण वर्ष 2024 में जारी किया गया है।

वर्तमान समय में मानक हिन्दी वर्तनी का कार्यक्षेत्र केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय है। हिन्दी वर्तनी के मानकीकरण की दिशा में कई दिग्गजों ने अपना योगदान दिया, जिनमें से आचार्य किशोरीदास वाजपेयी तथा आचार्य रामचंद्र वर्मा के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी भाषा के संघ और कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप देश के भीतर और बाहर हिन्दी सीखने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाने से हिन्दी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित करना आवश्यक और कालोचित लगा, ताकि हिन्दी शब्दों की वर्तनियों में अधिकाधिक एकरूपता लाई जा सके। तदनुसार, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 1961 में हिन्दी वर्तनी का मानक स्वरूप निर्धारित करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्त की। इस समिति ने अप्रैल 1962 में अंतिम रिपोर्ट दी। समिति की चार बैठकें हुईं, जिनमें गंभीर विचार-विमर्श के बाद वर्तनी के संबंध में एक नियमावली निर्धारित की गई। समिति ने तदनुसार, 1962 में अपनी अंतिम सिफारिशें प्रस्तुत कीं, जो सरकार द्वारा अनुमोदित की गईं और अंततः हिन्दी भाषा के मानकीकरण की सरकारी प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने प्रथमत: 1968 में "हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" नाम से लघु पुस्तिका प्रकाशित की। वर्ष 1983 में इस पुस्तिका का नि:शुल्क संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण "देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" प्रकाशित किया गया। इस पुस्तिका की लगातार बढ़ती माँग को देखते हुए वर्ष 1989 में इसका पुनर्मुद्रण कराया गया तथा विभिन्न हिंदी सेवी संस्थाओं, कार्यालयों, शिक्षण संस्थानों में इसका नि:शुल्क वितरण कराया गया, ताकि अधिक-से-अधिक संस्थाओं में हिंदी के मानक रूप का प्रयोग बढ़े। राजभाषा हिंदी के संदर्भ में सभी मंत्रालयों, राज्यों, सरकारों, शैक्षिक संस्थाओं एन.सी.ई.आर.टी. आदि के साथ समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि ने भाषा में एकरूपता लाने के लिए इस मानकीकरण को आधिकारिक रूप से अपनाया।

वर्ष 1968 के मानकीकरण का मुख्य आधार प्रयोक्ता और टंकण यंत्र था। सूचना के आज के युग में हिंदी भाषा के मानकीकरण को पुन: संशोधित एवं परिवर्तित करने तथा देवनागरी लिपि के लिए कंप्यूटरीकृत यूनीकोड के निर्माण करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी तारतम्य में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा वर्ष 2003 में देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के लिए अखिल भारतीय संगोष्ठी का आयोजन किया था। इस संगोष्ठी में मानक हिंदी वर्तनी के लिए जो नियम निर्धारित किये गये थे उनका विवरण नीचे दिया गया है। "देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी का मानकीकरण" पुस्तिका में मानक हिंदी वर्णमाला, मानक हिंदी वर्तनी, विरामादि चिह्न, कोशों में अकारादिक्रम, परिवर्धित देवनागरी लिपि आदि विषयों तथा पैराग्राफ़ों के विभाजन तथा उपविभाजन से संबंधित मानक जानकारी दी गई है।

हिंदी संघ की राजभाषा है, इसलिए हिंदी का मानकरूप निर्धारित करना आवश्यक था, ताकि वर्णमाला में सर्वत्र एकरूपता रहे। हिंदी वर्णमाला एवं अंकों का मानक स्वरूप निर्धारित किया गया जो निम्न प्रकार है:-

मानक हिंदी वर्णमाला मानक रूप

स्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ

अनुस्वार और विसर्ग - अं अः

अनुनासिक चिह्न - अँ

टिप्पणी - अयोगवाह अं अः (अं अनुस्वार, अँ अनुनासिक ध्वनि है तथा अ: विसर्ग है जो 1/3 ह ध्वनि को प्रदर्शित करती है।)

हिंदी वर्णमाला में कुल 53 वर्ण हैं जिनमें से उपर्युक्त 13 वर्ण स्वर हैं और निम्नलिखित 35 व्यंजन, 4 संयुक्त व्यंजन और एक विशिष्ट व्यंजन है।

व्यंजन के मानक

क ख ग घ ङ	कंठ्य	Guttaral
च छ ज झ ञ	तालव्य	Palatals
ट ठ ड ढ ण	मूर्धन्य	Cerebrals
त थ द ध न	दंत्य	Dentals
प फ ब भ म	ओष्ठ्य	Labials
य र ल व	अंतस्थ/अर्धस्वर	Semi Vowels
श ष स ह	ऊष्म	Sibilants
संयुक्त व्यंजन		Conjunts
क्ष त्र ज्ञ श्र		

उत्क्षिप्त व्यंजन

ड़ ढ़

विशिष्ट व्यंजन

ळ

हल चिह्न (्)

इस प्रकार मूल व्यंजनों की संख्या 33 एवं कुल व्यंजन 40 हुए।

(आगत ध्वनियाँ) - ऑ (ॉ) ज़ फ़

टिप्पणी - अनेक मुद्रणालयों में उपर्युक्त लिपि के पुराने रूपों का प्रयोग किया जाता है। प्रतिभागियों को उन्हें देखकर भ्रमित नहीं होना चाहिए। अरबी- फारसी से हिंदी में पाँच ध्वनियाँ आई हैं। क, ख, ग, ज़, फ। इनमें से दो ध्वनियाँ क ग उच्चारण के स्तर पर हिंदी में परिवर्तित हो गई हैं। ख़, ध्वनि भी लगभग हिंदी में खपने की प्रक्रिया में है। शेष दो ध्वनियाँ ज़ फ़ अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं।

हिन्दी की प्रमुख बोलियों यथा- हरियाणवी, मारवाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी के अतिरिक्त तमिल, तेलगु, मलयालम में ळ ध्वनि का प्रयोग होता है। अतः वर्णमाला विशिष्ट व्यंजन के रूप में ळ वर्णमाला को स्थान दिया गया है।

हिंदी शब्दकोशों में वर्णों का क्रम इस प्रकार होता है –

स्वर - अं अँ अः अ आ इ ई उ ऊ ऋ
ए ऐ ओ औ

व्यंजन- क क्ष ख ग घ ङ
च छ ज ज्ञ झ ञ
ट ठ ड ड़ ढ ढ़ ण
त त्र थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल ळ व
श श्र ष स ह

टिप्पणी- संस्कृत के लिए प्रयुक्त देवनागरी में ऋृ तथा लृ भी सम्मिलित है, किन्तु हिन्दी में इनका प्रयोग न होने के कारण इन्हें हिन्दी की मानक वर्णमाला में स्थान नहीं दिया गया है।

भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप

1 2 3 4 5 6 7 8 9 0

भारतीय अंकों का देवनागरी स्वरूप

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा। उदाहरणार्थ-- 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0

हिंदी वर्तनी का मानकीकरण

किसी भी भाषा के सीखने-सिखाने में सहायक या बाधक बनने वाले दो प्रमुख तत्व हैं, उसका व्याकरण और उसकी लिपि। लिपि का एक पक्ष है सामान्य और विशिष्ट स्वनों के पृथक प्रतीक-वर्णों की समृद्धि, उनका परस्पर स्पष्ट आकार, लिखावट में सरलता आदि। लिपि का दूसरा पक्ष वर्तनी है। एक ही ध्वनि को प्रकट करने के लिए विविध वर्णों का प्रयोग वर्तनी को जटिल बना देता है और यह लिपि का एक सामान्य दोष माना जाता है। वर्तनी संबंधी नियम इस प्रकार है :-

1. संयुक्त वर्ण

(क) खड़ी पाई वाले व्यंजन

ख, ग, घ, च, ज, झ, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स इन खड़ी पाई वाले 22 व्यंजनों का संयुक्त रूप खड़ी पाई को हटाकर बनाना है। जैसे :-

ख्याति	लग्न	विघ्न		
बच्चा	ज्वाला	झ		प चम
		कण्ठ		
वत्स	पथ्य	ध्वनि		अन्न
प्यास		ब्याज	अभ्यास	अम्ल
शय्या	उल्लास	व्यंजन		
विश्व	पुष्प	स्वीकार		

(बीच में खड़ी पाई वाले वर्ण क और फ इसके अपवाद हैं। इनमें खड़ी पाई होने के बावजूद भी पाई के बाद के चिह्न को हटाया जाता है न कि खड़ी पाई को जैसे- पक्का, रफ्तार आदि। शब्द संयुक्त, पक्का, चक्का आदि पुरानी वर्तनी में न लिखे जाएँ।)।

(ख) अन्य व्यंजन

ड़, छ, ट, ठ, ड, ढ, द एवं ह इन आठ वर्णों से बनने वाले संयुक्त वर्ण हल चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। जैसे, वाड्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या, ब्रह्मा आदि। ये वर्ण अक्षर के नीचे अक्षर लिखकर न लिखे जाएँ।

(ग) संयुक्त र के प्रचलित तीनों रूप ˜, /, ^ यथावत रहेंगे।

1. धर्म, कर्म, सर्प, अर्थ, कार्रवाई, कार्यवाही, वर्तनी आदि में र स्वर विहीन है।

2. क्रम, द्रव्य, भ्रम, प्रचलन, प्रयास आदि में र स्वर युक्त है लेकिन जिस व्यंजन के साथ यह मात्रा लगाई जा रही है वह व्यंजन स्वर विहीन है।

3. राष्ट्र, ट्रक, ड्रम, ड्रामा, ट्रेन, ट्राली आदि में र स्वर युक्त है और ट और ड स्वर विहीन है। ये मात्रा केवल ट और ड में ही इस प्रकार लगाई जाती है।

(घ) श्र का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। इसे श्र रूप में नहीं लिखा जाएगा। संयुक्त रूप के लिए त्र और त्र दोनों रूपों में से किसी एक के प्रयोग की छूट होगी।

(ङ) हल चिह्न युक्त वर्ण से बनने वाले संयुक्ताक्षर के द्वितीय व्यंजन के साथ इ की मात्रा का प्रयोग संबंधित व्यंजन के तत्काल पूर्व ही किया जाएगा, न कि पूरे युग्म से पूर्व,

यथा कुट्टिम, द्वितीय, बुद्धिमान आदि (कुट्टिम, द्वितीय, बुद्धिमान आदि नहीं लिखा जाए) यथा- कुट्टिम, चिट्ठियाँ, बुद्धिमान, चिह्नित आदि लिखा जाय।

(च) संस्कृत भाषा के हिंदी में प्रचलित शब्दों में प्रयुक्त संयुक्तवर्ण पुरानी शैली में ही प्राथमिकता दी जाय। उदाहरणार्थ – संयुक्त चिह्न, विद्या, चञ्चल, विद्वान, वृद्धि, द्वितीय, बुद्धि आदि।

2. विभक्ति-चिह्न

(क) हिंदी के विभक्ति - चिह्न सभी प्रकार के संज्ञा शब्दों में पृथक लिखे जाएँ, जैसे- राम ने, राम को, राम से तथा स्त्री ने, स्त्री को, स्त्री से आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न मिलाकर लिखे जाएँ, जैसे- उसने, उसको, उससे, उसपर आदि।

(ख) सर्वनाम के साथ यदि दो विभक्ति - चिह्न हों तो उनमें से पहला मिलाकर और दूसरा पृथक लिखा जाए, जैसे- उसके लिए, उसमें से।

(ग) सर्वनाम और विभक्ति के बीच ही, तक आदि का प्रयोग हो तो विभक्ति को पृथक लिखा जाए, जैसे- आप ही के लिए, मुझ तक को।

3. क्रियापद

संयुक्त क्रियाओं में सभी अंगभूत क्रियाएँ पृथक्-पृथक् लिखी जाएँ, जैसे- पढ़ा करता है, आ सकता है, जाया करता है, खाया करता है, जा सकता है, कर सकता है, किया करता था, पढ़ा करता था, खेला करेगा, घूमता रहेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

4. हाइफन

हाइफन का प्रयोग स्पष्टता के लिए किया गया है।

(क) द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन रखा जाए जैसे-

राम-लक्ष्मण, शिव–पार्वती संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हँसी-मजाक, लेन-देन, पढ़ना-लिखना, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि।

(ख) सा, जैसा आदि से पूर्व हाइफन रखा जाए, जैसे-

तुम-सा, राम-जैसा, चाकू से तीखे।

(ग) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग केवल वहीं किया जाए, जहाँ उसके बिना भ्रम होने की संभावना हो, अन्यथा नहीं, जैसे- भू-तत्व। सामान्यतः तत्पुरुष समासों में हाइफन लगाने की आवश्यकता नहीं है, जैसे- रामराज्य, राजकुमार, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या आदि।

इसी तरह यदि अ-नख (बिना नख का) समस्त पद में हाइफन न लगाया जाए तो उसे अनख पढ़े जाने से क्रोध का अर्थ भी निकल सकता है। उदाहरण अ-नति (नम्रता का अभाव) अनति (थोड़ा), अ-परस (जिसे किसी ने न छुआ हो), अपरस (एक चर्म रोग), भू-तत्व (पृथ्वी-तत्व), भूतत्व (भूत होने का भाव) आदि समस्त पदों की भी यही स्थिति है। ये सभी युग्म वर्तनी और अर्थ दोनों दृष्टियों से भिन्न-भिन्न शब्द हैं।

(घ) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे- द्वि-अक्षर, द्वि-अर्थी आदि।

5. अव्यय

तक, साथ आदि अव्यय सदा पृथक लिखे जाएँ, जैसे- आपके साथ, यहाँ तक।

इस नियम को कुछ और उदाहरण देकर स्पष्ट करना आवश्यक है। हिंदी में आह, ओह, अहा, हे, ही, तो, सो, भी, न, जब, तब, कब, कहाँ, सदा, क्या, श्री, जी, तक, भर, मात्र, साथ, कि, किंतु, मगर, लेकिन, चाहे, या, अथवा, तथा, यथा और आदि अनेक प्रकार से भावों का बोध कराने वाले अव्यय है। कुछ अव्ययों के आगे कारक चिह्न भी आते हैं, जैसे- आप ही के लिए, मुझ तक को, आपके साथ, गज भर कपड़ा, देश भर, रात भर, दिन भर, वह इतना भर कर दे, मुझे जाने तो दो, काम भी नहीं बना, पचास रुपए मात्र आदि। सम्मानार्थक श्री और जी, अव्यय भी पृथक लिखे जाएं, जैसे- श्री श्रीराम, कन्हैयालाल जी, महात्मा जी आदि।

समस्त पदों में प्रति, मात्र, यथा आदि अव्यय पृथक नहीं लिखे जाएंगे, जैसे- प्रतिदिन, प्रतिशत, मानवमात्र, निमित्तमात्र, यथासमय, यथोचित आदि। यह सर्वविदित नियम है कि समास होने पर समस्त पद एक माना जाता है। अतः एक साथ लिखना ही संगत है।

6. श्रुतिमूलक य, व

(क) जहाँ श्रुतिमूलक य, व का प्रयोग विकल्प से होता है, वहाँ न किया जाए, अर्थात् किए- किये, नई-नयी, हुआ- हुवा आदि में पहले (स्वरात्मक) रूप का ही प्रयोग किया जाए। यह नियम क्रिया, विशेषण, अव्यय आदि सभी रूपों और स्थितियों में लागू माना जाए, जैसे- दिखाए गए, राम के लिए, पुस्तक लिए हुए, नई दिल्ली आदि।

(ख) जहाँ य श्रुतिमूलक व्याकरणिक परिवर्तन न होकर शब्द का ही मूल तत्व हो, वहाँ वैकल्पिक श्रुतिमूलक स्वरात्मक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है, जैसे- स्थायी, अव्ययीभाव, दायित्व आदि। यहाँ स्थाई, अव्यईभाव, दाइत्व नहीं लिखा जाएगा।

7. अनुस्वार तथा अनुनासिक - चिह्न (चंद्रबिंदु)

(क) संयुक्त व्यंजन के रूप में जहाँ पंचमाक्षर के बाद सवर्गीय शेष चार वर्गों में से कोई वर्ण हो तो एकरूपता और मुद्रण / लेखन की सुविधा के लिए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए, जैसे- गंगा, चंचल, ठंडा, संध्या, संपादक आदि में पंचमाक्षर के बाद उसी वर्ग के वर्ण आगे आते हैं, अंतः पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होगा (गङ्गा, चञ्चल, ठण्डा, सन्ध्या, सम्पादक का नहीं)। यदि पंचमाक्षर के बाद किसी अन्य वर्ग का कोई वर्ण आए, अथवा वही पंचमाक्षर दुबारा आए तो पंचमाक्षर अनुस्वार के रूप में परिवर्तित नहीं होगा, जैसे- वाङ्मय, अन्य, अन्न, सम्मेलन, सम्मति, चिन्मय उन्मुख आदि। अतः वांमय, अंय, अनं, संमेलन, संमति, चिंमय, उंमुख आदि रूप ग्राहय नहीं हैं।

(ख) चंद्रबिंदु के बिना प्रायः अर्थ में भ्रम की गुंजाइश रहती है, जैसे- हंस (पक्षी), हँस (हँसना), अंगना (सुंदर नारी), अँगना (आँगन), चांद (गंजा सिर), चाँद (चंद्रमा) आदि में। अतएव ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चंद्रबिदु का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए। किंतु जहाँ (विशेषकर शिरोरेखा के ऊपर जुड़ने वाली मात्रा के साथ) चंद्रबिंदु के प्रयोग से छपाई आदि में बहुत कठिनाई हो और चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु (अनुस्वार चिह्न) का प्रयोग किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न न करे, वहाँ चंद्रबिंदु के स्थान पर बिंदु के प्रयोग की छूट दी जा सकती है, जैसे- नहीं, में मैं आदि के प्रसंग में छंद की दृष्टि से चंद्रबिंदु का यथास्थान अवश्य प्रयोग किया जाए। इस प्रकार छोटे बच्चों को प्रवेशिकाओं में जहाँ चंद्रबिंदु का उच्चारण सिखाना अभीष्ट हो, वहाँ उसका यथास्थान प्रयोग किया जाए, जैसे- कहाँ, हँसना, आँगन, सँवारना, मैं, में, नहीं आदि।

8. विदेशी ध्वनियाँ

(क) अरबी-फारसी के वे शब्द जो हिंदी के अंग बन चुके हैं और हिंदी ध्वनियों में प्रचलित हो चुके हैं और उनका रूपांतरित रूप हिंदी में मान्य है, जैसे कलम, किला, दाग आदि (क़लम, क़िला, दाग नहीं)। पर जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में प्रयोग अभीष्ट हो अथवा उच्चारणगत भेद बताना आवश्यक हो वहाँ उनके हिंदी में प्रचलित रूपों में यथास्थान नुक्ते लगाए जाएं, जैसे - खाना, खाना, राज राज़, फन-फ़न। सारांश रूप में यह

कहा जा सकता है कि अरबी-फारसी की मुख्यतः पाँच ध्वनियाँ (क, ख़, ग, ज़ और फ़) हिंदी में आई हैं जिनमें से दो (क़ और ग़) तो हिंदी उच्चारण (क, ग) में परिवर्तित हो गई हैं, (ख) ध्वनि भी लगभग हिंदी में खपने की प्रक्रिया में है और शेष दो ध्वनियाँ (ज़ फ़) अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए संघर्षरत हैं।

(ख) अंग्रेजी के जिन शब्दों में अर्धविवृत ओ ध्वनि का प्रयोग होता है, उनके शुद्ध रूप का हिंदी में प्रयोग अभीष्ट होने पर ऑ की मात्रा (-) के ऊपर अर्धचंद्र का प्रयोग किया जाए जैसे- डॉक्टर, कॉफी, हॉकी, कॉलेज आदि। जहाँ तक अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं से नए शब्द ग्रहण करने और उनके देवनागरी लिप्यंतरण का संबंध है, अगस्त-सितंबर 1962 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली पर आयोजित भाषाविदों की संगोष्ठी में अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के देवनागरी लिप्यंतरण के संबंध में की गई सिफारिश उल्लेखनीय है। उसमें यह कहा गया है कि अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण इतना कठिन नहीं होना चाहिए कि उसके लिए वर्तमान देवनागरी वर्णों में अनेक नए संकेत - चिह्न लगाने पड़ें। अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी लिप्यंतरण मानक अंग्रेजी उच्चारण के अधिक-से-अधिक निकट होना चाहिए। उसमें भारतीय शिक्षित समाज में प्रचलित उच्चारण संबंधी थोड़े-बहुत परिवर्तन किए जा सकते हैं। अन्य भाषाओं के शब्दों के संबंध में भी यही नियम लागू होने चाहिए।

(ग) हिंदी में कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनके दो-दो रूप बराबर चल रहे हैं। समाज में दोनों रूपों की एक-सी मान्यता है। फ़िलहाल इनकी एकरूपता आवश्यक नहीं समझी गई है। कुछ उदाहरण हैं- गरदन - गर्दन, गरमी–गर्मी, बरफ–बर्फ, बिलकुल - बिल्कुल, सरदी - सर्दी, कुरसी - कुर्सी, भरती - भर्ती, फ़ुरसत - फ़ुर्सत, वापिस–वापस, बरतन - बर्तन, दोबारा - दुबारा आदि।

9. हल चिह्न

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी में सामान्यतः संस्कृत रूप ही रखा जाए। परंतु जिन शब्दों के प्रयोग में हिंदी में हल् चिह्न लुप्त हो चुके हैं, उनमें उसको फिर से लगाने का प्रयत्न न किया जाए, जैसे- महान्, विद्वान् आदि के न में।

10. स्वन-परिवर्तन

संस्कृतमूलक तत्सम शब्दों की वर्तनी को ज्यों-का-त्यों ग्रहण किया जाए। अतः ब्रह्मा को ब्रम्हा, चिह्न का चिन्ह, उऋण को उरिण में बदलना उचित नहीं होगा। इसी प्रकार ग्रहीत, दृष्टव्य, प्रदार्शिनी, अत्याधिक, अनाधिकार, आदि अशुद्ध प्रयोग ग्राहय नहीं है।

इनके स्थान पर क्रमशः- गृहीत, दृष्टव्य, प्रदर्शनी, अत्यधिक, अनधिकार ही लिखना चाहिए। जिन तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों के संयोग की स्थिति में एक द्वित्वमूलक व्यंजन लुप्त हो गया है उसे न लिखने की छूट है, जैसे- अर्द्ध-अर्ध, उज्ज्वल-उज्जवल, तत्त्व-तत्व आदि।

11. विसर्ग

संस्कृत के जिन शब्दों में विसर्ग का प्रयोग होता है, वे यदि तत्सम रूप में प्रयुक्त हों तो विसर्ग का प्रयोग अवश्य किया जाए, जैसे- दुःखानुभूति में। यदि शब्द के तद्भव रूप में विसर्ग का लोप हो चुका हो तो उस रूप में विसर्ग के बिना भी काम चल जाएगा, जैसे- दुख-सुख के साथी।

12. ऐ, औ का प्रयोग

हिंदी में ऐ (ै), औ (ौ) मात्राएं दो प्रकार की ध्वनियों को व्यक्त करती हैं जिनकी भिन्नता निम्न शब्दों में देखी जा सकती है। जैसे- पैसा, बैंक, कैसा, जैसा, ऐनक, है तथा और, नौकर औरत, चौपाल आदि में ऐ और औ स्वर के अनुसार ही उच्चारण होता है लेकिन गवैया, नैया, भैया, मैया तथा कौआ, चौवन, पौवा आदि इन शब्दों में ऐ मात्रा के लिए अय व अइ तथा औ के लिए अव व अउ ध्वनि उच्चरित होती है। लेकिन लिपि स्तर पर गवय्या, कव्वा आदि संशोधनों की आवश्यकता नहीं है।

14. पूर्वकालिक प्रत्यय

पूर्वकालिक प्रत्यय कर क्रिया से मिलाकर लिखा जाए, जैसे- मिलाकर, खा-पीकर, रो-रोकर आदि।

15. अन्य नियम

1. शिरोरेखा का प्रयोग करना चाहिए।
2. पूर्ण विराम को छोड़कर शेष विराम आदि चिह्न अंग्रेजी वाले प्रयोग करने चाहिए।
   जैसे- (- —, ; ? ! : =)
   (विसर्ग के चिह्न को ही कोलन का चिह्न मान लिया जाए)
3. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग करना चाहिए।
4. पूर्ण विराम (।)
5. अर्ध-विराम (;)
6. अल्प-विराम (,)
7. प्रश्न चिह्न (?)

8. विस्मयादिवोधक तथा संबोधन (!)
9. उद्धरण (“ ”)
10. कोष्ठक - ( ) []
11. योजक (-)
12. निदेशक (डैश) (–)
13. विवरण चिह्न (:-)
14. हंस-पद (s । ^)

अगर हम उपर्युक्त निदेशों को ध्यान में रखते हुए हिंदी लिखने में सावधानी बरतें तो अशुद्धियों की गुंजाइस कम होगी एवं वर्तमान समय में कम्प्यूर के युग में मानक के अनुसार हिंदी का प्रयोग कर सकेगें एवं टाइपिंग में भी असुविधा कम होगी।

राजभाषा परामर्शी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6387521396

संदर्भः कार्यशाला संदर्शिका

प्रयोजनमूलक हिन्दी

—डॉ. अनुराग त्रिपाठी—

भाषा एक अधिगमशील प्रत्यय है। इसका सीखना माँ की गोद से ही आरम्भ हो जाता है, जो जीवन भर चलता रहता है। भाषा के मूल में सम्प्रेषण होता है। भाषा के माध्यम से मनुष्य के भाव तथा विचार व्यक्त होते हैं। इसी प्रकार भाषा के माध्यम से व्यक्त भावों एवं विचारों को ग्रहण भी किया जाता है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिन्दी सर्वाधिक लोगों द्वारा समझी और प्रयोग की जाने वाली भाषा है। इसका प्रयोग देश से लेकर विदेश तक होता है। हिन्दी भारतवर्ष की जनभाषा है। संविधान में हिन्दी को राजभाषा का गरिमामय पद प्राप्त है। हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रीयता की ही नहीं अस्मिता की भी पहचान है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य है हिन्दी का वह रूप जिसका हम अपने दैनिक जीवन के निर्वाह के लिए उपयोग करते हैं। हमारे दैनिक जीवन में प्रशासनिक एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में व्यवहार होने वाले भाषा रूप को हम प्रयोजनमूलक हिन्दी कहते हैं। डॉ. रामलखन मीणा के शब्दों में "प्रयोजनमूलक हिन्दी में लालित्य, अलंकार और सौन्दर्य कतई आवश्यक नहीं, बल्कि प्रभावोत्पादकता और सम्प्रेषणीयता वरेण्य है। अभिप्राय यह है कि अकादमिक हिन्दी के अतिरिक्त प्रयोजनमूलक हिन्दी के रूप में एक ऐसी भाषा का विकास हुआ है जो जन-संचार अर्थात् मास-कम्प्युनिकेशन की भाषा है।"[1] आज हिन्दी केवल हर्षाय ग्रन्थों की भाषा नहीं है, बल्कि लाखों हाथों को काम और करोड़ों लोगों के पेट की आग बुझाने की भाषा है और यही हिन्दी की प्रयोजनमूलकता का सत्य है, जो हिन्दी की छवि को सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की शाश्वता प्रदान करता है।

हिन्दी में प्रयोजनमूलक शब्द Functional Language के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है- जीवन की विविध विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली भाषा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी के विविध रूपों में जिसका प्रयोग कार्यालयों, बैंकों, जनसंचार माध्यमों एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जाता है, प्रयोजनमूलक हिन्दी कहलाता है। हिन्दी का प्रयोजनमूलक स्वरूप सामान्य एवं

---

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी सृजन और समीक्षा- डॉ. रामलखन मीणा, कल्पना प्रकाशन, जहाँगीरपुरी, दिल्ली-110035

साहित्यिक हिन्दी से निश्चित रूप से अलग होता है । इसे ही डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया 'कामकाजी हिन्दी' कहते हैं तो डॉ. रमा प्रसन्न नायक इसको 'व्यावहारिक हिन्दी' कहना अधिक उचित मानते हैं । श्री मोंटूरी सत्यनारायण तथा ब्रजेश्वर वर्मा इसको 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' कहने के पक्षधर हैं । श्री मोंटूरी सत्यनारायण इस नामकरण पर इस तरह से टिप्पणी करते हैं- "जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाई जाने वाली हिन्दी ही प्रयोजनमूलक हिन्दी है। भाषा के दो पक्ष या प्रकार्य होते हैं। एक का संबंध हमारी सौन्दर्यपरक अनुभूति का आलम्बन होता है। यह आत्म-केन्द्रित या आत्म-सुख का उपकरण होता है। दूसरे का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकता और जीवन की उस व्यवस्था से जुड़ा होता है, जो व्यक्तिपरक होकर भी समाज सापेक्ष होती है और जिसका संबंध मूलतः हमारी जीविका के साथ रहता है और उसके निमित्त जो सेवा माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है। भाषा व्यवहार का यह दूसरा पक्ष ही भाषा का प्रयोजनमूलक संदर्भ है। अतः प्रयोजनमूलक हिन्दी से तात्पर्य हिन्दी के उन विविध रूपों से है जो सेवा माध्यम के रूप में सामने आते हैं।"[2]

प्रयोजनमूलक हिन्दी की उपयोगिता

भाषा के सामान्यतः तीन रूप होते हैं- साहित्यिक, व्यावहारिक एवं प्रयोजनमूलक। व्यावहारिक भाषा एवं प्रयोजनमूलक भाषा में सूक्ष्म अंतर है । दैनंदिन व्यवहार्य भाषा की अपेक्षा प्रयोजनमूलक भाषा अधिक रूढ और बहुआयामी होती है क्योंकि उसका संबंध वाङ्मय के विविध क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रशासन और तकनीकी से भी होता है । संचार साधनों के नए युग में भाषाएँ राष्ट्र की परिधि का अतिक्रमण कर रही हैं । ऐसे में प्रयोजनमूलक भाषा के राष्ट्रीय नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का विकास आवश्यक है । नए प्रयोजनों के लिए हिंदी की उपादेयता को समझाना ही इसका उद्देश्य है । नए प्रयोजनों में इलेक्ट्रॉनिक, मीडिया, इंटरनेट और कम्प्यूटर तथा अनुवाद प्रमुख हैं। वे तीनों क्षेत्र वैश्विक संदर्भों से जुड़े है।

हिंदी विद्वानों ने प्रयोजनमूलक भाषा की प्रमुख उपयोगिता निम्न रूप में वर्णित की है-

1. हिंदी की प्रयोजनमूलक शब्दावली की निर्माण प्रक्रिया परवर्ती है। यह व्यक्तिनामों से न जुड़कर गुणधर्म के अनुसार विकसित हुई है। उपसर्गों, प्रत्ययों और सामासिक शब्दों की बहुलता के कारण हिंदी की प्रयोजनमूलक शब्दावली स्वयं अर्थ स्पष्ट करने में समर्थ है इसलिए हिंदी की शब्दावली का अनुप्रयोग सहज है।

---

2. प्रयोजनमूलक हिन्दी - डॉ. शर्वेश पाण्डेय, देवश्री प्रकाशन, मऊ, उत्तर प्रदेश।

2. प्रयोजनमूलक शब्दों की निर्माण प्रक्रिया में कार्य कारण संबंध देखा जाता है । प्रयोजनमूलक शब्द पारिभाषिक होते हैं। किसी वस्तु के कार्य-कारण संबंध के आधार पर उनका नामकरण होता है जो शब्द से ही प्रतिध्वनित होता है । वे शब्द वैज्ञानिक तत्त्वों की भाँति सार्वभौमिक होते हैं । हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा रही है।
3. हिंदी की प्रयोजनमूलक शब्दावली सरल और एकार्थक है जो प्रयोजनमूलक भाषा का मुख्य गुण है। प्रयोजनमूलक भाषा में अनेकार्थकता दोष है। हिंदी शब्दावली इस दोष से मुक्त है।
4. हिंदी में पर्यायी शब्दों की संख्या अधिक है। ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में उसके अर्थ को स्पष्ट करनेवाले भिन्न पर्याय चुनकर नए शब्दों का निर्माण संभव है। इससे वाचिक शब्द ठीक वही अर्थ प्रस्तुत कर देता है। अंग्रेजी के जनरल मैनेजर और जनरल नालेज में जनरल दो अर्थ दे रहा है । हिंदी में दोनों के लिए अलग-अलग शब्द हैं महाप्रबंधक और सामान्य ज्ञान। हिंदी का वाच्यार्थ भ्रांति नहीं उत्पन्न करता।

प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिंदी एक समर्थ भाषा है । स्वतंत्रता के पश्चात् प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में स्वीकृत होने के बाद हिंदी में न केवल तकनीकी शब्दावली का विकास हुआ है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनी प्रकृति के अनुरूप ढाल लिया है। प्रयोजनमूलक क्षेत्र में नवीनतम उपलब्धि इंटरनेट तक की शब्दावली हिंदी में उपलब्ध है और निरंतर नए प्रयोग हो रहे हैं।

प्रयोजनमूलक हिन्दी आज की महती आवश्यकता है। वास्तव में कार्यालयीय हिन्दी को ही प्रयोजनमूलक हिन्दी का नाम विशेष रूप से दिया गया है। प्राय: कहा जाता था कि कार्यालयों में समाविष्ट होने की हिन्दी में क्षमता नहीं है । यह एक चुनौती थी और प्रयोजनमूलक हिन्दी के माध्यम से उस चुनौती को निराधार सिद्ध कर दिया। आज सभी कार्यालयों में हिन्दी में कार्य हो रहा है। इसके प्रमुख अंग हैं संक्षेपण, पल्लवन, पत्र-लेखन, प्रतिवेदन, टिप्पण, प्रारूपण तथा पारिभाषिक शब्दावली।

सहायक आचार्य (हिन्दी)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453244602

हिंदी साहित्य लेखन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका

—आलोक कुमार पाण्डेय—

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा और हिंदी साहित्य में इसकी भूमिका

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence - AI) वह तकनीक है, जिसके माध्यम से मशीनें मानवीय बुद्धि का अनुकरण कर सकती हैं। यह मशीन लर्निंग (ML), प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (NLP) और डेटा विश्लेषण जैसी तकनीकों पर आधारित होती है। आज AI न केवल विज्ञान और प्रौद्योगिकी में बल्कि साहित्य, कला और रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उद्देश्य मशीनों को इस तरह सक्षम बनाना है कि वे मानव की तरह सोच सकें, निर्णय ले सकें और नई चीजों को सीख सकें। आधुनिक AI प्रणाली भाषा समझने, अनुवाद करने, कविता लिखने, लेख संपादित करने और यहां तक कि पूरी किताबें लिखने में सक्षम हो चुकी है। हिंदी साहित्य में AI की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। AI आधारित टूल जैसे ChatGPT, Sudowrite, और Jasper लेखकों को विचार देने, प्रारूप तैयार करने और रचनात्मक लेखन में सहायता कर रहे हैं। गूगल अनुवाद, अनुवादिनी, भाषिणी और अन्य नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग टूल हिंदी साहित्य को वैश्विक स्तर पर पहुँचाने में सहायक हो रहे हैं। AI आधारित व्याकरण जांच और टोन एनालिसिस टूल लेखकों को त्रुटिहीन लेखन में मदद करते हैं। AI के माध्यम से ऑडियोबुक, वॉयस असिस्टेंट और साहित्यिक डेटाबेस बनाए जा रहे हैं, जिससे हिंदी साहित्य अधिक सुलभ हो रहा है। AI अब हिंदी कहानियाँ, कविताएँ और संवाद भी तैयार कर सकता है, जिससे साहित्यिक सृजन की प्रक्रिया में नवीनता आई है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी साहित्य को नया आयाम दे रही है। हालाँकि, यह मानव लेखकों की रचनात्मकता और संवेदनाओं का स्थान नहीं ले सकती, लेकिन यह एक सहायक उपकरण के रूप में साहित्यिक सृजन को अधिक प्रभावी और सहज बना सकती है। यदि AI का सही उपयोग किया जाए, तो यह हिंदी साहित्य के प्रसार और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

तकनीक का साहित्य पर प्रभाव

तकनीक और साहित्य का संबंध प्राचीन काल से रहा है, लेकिन आधुनिक युग में डिजिटल तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी है।

इंटरनेट, सोशल मीडिया, ई-बुक्स, और ऑडियोबुक जैसी तकनीकी सुविधाओं ने साहित्य के लेखन, प्रकाशन और पठन-पाठन की प्रक्रिया को सरल और व्यापक बना दिया है। तकनीक ने हिंदी लेखकों के लिए लेखन को अधिक सुगम बना दिया है। टाइपिंग सॉफ्टवेयर, ग्रामर चेकिंग टूल, और AI-आधारित लेखन सहायक जैसे ChatGPT, Gemini Deepseek अब लेखकों को नए विचार देने, शैली सुधारने और लेख को संपादित करने में मदद कर रहे हैं। इससे लेखन प्रक्रिया तेज और प्रभावशाली हो गई है। पहले लेखकों को अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराने के लिए प्रकाशकों पर निर्भर रहना पड़ता था, लेकिन डिजिटल पब्लिशिंग प्लेटफ़ॉर्म जैसे किंडल, नोशन प्रेस और प्रतिलिपि ने स्व-प्रकाशन (Self-publishing) को आसान बना दिया है। अब कोई भी लेखक अपनी कृति को ऑनलाइन प्रकाशित कर सकता है और विश्वभर के पाठकों तक पहुँचा सकता है। फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर और ब्लॉगिंग प्लेटफार्मों ने हिंदी साहित्य को एक नया मंच दिया है। युवा कवि और लेखक अपनी रचनाएँ सोशल मीडिया पर साझा कर सीधे पाठकों से प्रतिक्रिया प्राप्त कर सकते हैं। इससे नए लेखकों को पहचान और प्रेरणा मिल रही है। आजकल पारंपरिक पुस्तकों के साथ-साथ ई-पुस्तकें (E-books) और ऑडियोबुक्स भी लोकप्रिय हो रही हैं। स्टोरीटेल, कुकू FM और ऑडिबल जैसे प्लेटफ़ॉर्म पर हिंदी साहित्य उपलब्ध है, जिससे लोग कहीं भी और कभी भी साहित्य का आनंद ले सकते हैं।

हिंदी साहित्य में नवाचार और तकनीक

हिंदी साहित्य समय के साथ लगातार विकसित होता रहा है। तकनीकी नवाचारों ने साहित्य को एक नए रूप में ढाल दिया है, जिससे इसके सृजन, प्रचार और पठन-पाठन की विधियाँ बदल गई हैं। मुद्रण क्रांति से लेकर डिजिटल युग तक, तकनीक ने साहित्य को अधिक लोकतांत्रिक और सुलभ बना दिया है। मुद्रण क्रांति ने हिंदी साहित्य को व्यापक जनसमूह तक पहुँचाया। 19वीं और 20वीं शताब्दी में प्रकाशित पत्रिकाओं—सरस्वती, हिंदुस्तानी अकादमी की पत्रिका, और कथा-संग्रहों ने हिंदी साहित्य को नई ऊँचाइयाँ दीं। किताबों की छपाई आसान हुई, जिससे लेखकों और पाठकों के बीच की दूरी कम हो गई। इंटरनेट और डिजिटल टेक्नोलॉजी ने साहित्य की दुनिया को पूरी तरह बदल दिया है। ऑनलाइन साहित्यिक पत्रिकाएँ, जैसे—हिंदी समय, तद्भव, जानकी पुल और प्रतिष्ठित ब्लॉग नए लेखकों को पहचान दिला रहे हैं। ई-पुस्तकें और ऑडियोबुक्स ने साहित्य को और सुलभ बनाया है। आज ब्लॉग और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म (जैसे—माध्यम,

प्रतिलिपि, ब्लॉगस्पॉट) साहित्यकारों को सीधे पाठकों से जोड़ रहे हैं । इंस्टाग्राम और फेसबुक पर साहित्यिक समूहों की सक्रियता बढ़ी है, जहाँ लेखक अपनी रचनाएँ साझा कर सकते हैं और पाठकों की प्रतिक्रिया तुरंत प्राप्त कर सकते हैं। मुद्रण क्रांति से डिजिटल युग तक हिंदी साहित्य ने नवाचारों को अपनाते हुए खुद को बदला है। ऑनलाइन साहित्यिक मंचों और डिजिटल तकनीकों ने साहित्य को अधिक समावेशी और वैश्विक बना दिया है, जिससे हिंदी साहित्य का प्रभाव और विस्तार बढ़ रहा है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की परिभाषा और कार्यप्रणाली

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधुनिक तकनीक का एक क्रांतिकारी पहलू है, जो मशीनों को सोचने, समझने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है। यह तकनीक अब हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी प्रवेश कर चुकी है, जिससे लेखन की परंपरागत विधियाँ बदल रही हैं। मशीन लर्निंग, प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP), और ऑटोमेटेड कंटेंट जेनरेशन जैसी तकनीकों ने हिंदी कविता, कहानी, अनुवाद और लेखन के नए आयाम खोल दिए हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी तकनीक है जो कंप्यूटर और मशीनों को मानव जैसी सोचने-समझने की शक्ति देती है। यह एल्गोरिदम और डाटा प्रोसेसिंग के माध्यम से सीखने, निर्णय लेने और समस्या समाधान करने में सक्षम होती है। AI का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है, जिसमें चिकित्सा, व्यापार, सुरक्षा, और अब साहित्य भी शामिल है।

AI की कार्यप्रणाली मुख्यतः तीन भागों में विभाजित की जा सकती है:

1. मशीन लर्निंग (Machine Learning): इसमें कंप्यूटर को डाटा से सीखने और भविष्य के निर्णय लेने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।
2. डीप लर्निंग (Deep Learning): यह मशीन लर्निंग की उन्नत तकनीक है, जो मानव मस्तिष्क की तरह तंत्रिका तंत्र (Neural Networks) का उपयोग करके जटिल समस्याओं का समाधान करती है।
3. प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP - Natural Language Processing): यह तकनीक कंप्यूटर को भाषा समझने, उत्पन्न करने और अनुवाद करने में सक्षम बनाती है। हिंदी साहित्य में AI के प्रवेश का मुख्य आधार यही तकनीक है।

मशीन लर्निंग की मदद से अब लेखकों के लिए कई सहायक टूल उपलब्ध हैं, जो लेखन प्रक्रिया को तेज और प्रभावी बनाते हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

ऑटोमेटेड लेखन सॉफ्टवेयर: ये सॉफ्टवेयर उपयुक्त डाटा के आधार पर लेख, कविता और कहानी लिख सकते हैं।

लेखन सुधार टूल: हिंदी में Grammarly जैसे टूल अभी सीमित हैं, लेकिन AI के विकास के साथ यह सुविधा व्यापक हो रही है।

भाव विश्लेषण (Sentiment Analysis): यह तकनीक लेख की भावना को समझने और उसे संवेदनशील रूप देने में मदद करती है।

NLP हिंदी साहित्य में कई तरीकों से उपयोगी सिद्ध हो रहा है जैसे गूगल ट्रांसलेट और अन्य AI-आधारित टूल्स हिंदी को वैश्विक स्तर पर ले जा रहे हैं। स्पीच टू टेक्स्ट (Speech-to-Text) एवं टेक्स्ट टू स्पीच(Text-to-Speech) लेखकों के लिए यह सुविधा काफी उपयोगी है, जिससे वे बोलकर भी साहित्य लिख सकते हैं या लिखित साहित्य को सुन सकता है। संवादात्मक लेखन (Conversational AI) के माध्यम से अब AI चैटबॉट हिंदी में कहानियाँ सुना और लिख सकते हैं। आज AI द्वारा लिखी गई कविताएँ और कहानियाँ चर्चा में हैं। उदाहरण के लिए, Open AI के मॉडल्स ने कई भाषाओं में साहित्यिक लेखन का प्रदर्शन किया है। AI द्वारा हिंदी साहित्य में निम्नलिखित प्रयोग किए जा रहे हैं:

1. स्वतः कविता लेखन: AI कुछ प्रमुख शब्दों के आधार पर छंदबद्ध कविताएँ रच सकता है।
2. कहानी लेखन: AI जनरेटिव मॉडल्स की मदद से विभिन्न थीम्स पर कहानियाँ तैयार कर सकता है।
3. पात्र और संवाद निर्माण: AI आधारित साहित्यिक टूल कहानी में पात्रों के संवाद और उनकी भावनाएँ तय कर सकते हैं। हालाँकि हिंदी साहित्य में AI का व्यापक उपयोग अभी प्रारंभिक चरण में है, लेकिन डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। हिंदी ब्लॉग्स, ऑनलाइन पत्रिकाएँ और ई-पुस्तकों में AI का योगदान देखा जा सकता है। हिंदी ब्लॉग्स का लगभग 30% कंटेंट AI आधारित संपादन टूल्स की सहायता से तैयार किया जा रहा है। 20% से अधिक साहित्यिक पत्रिकाएँ AI अनुवाद और संपादन टूल्स का उपयोग कर रही हैं। AI-आधारित हिंदी पुस्तकें और कहानियाँ धीरे-धीरे 10% बाजार हिस्सेदारी प्राप्त कर रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिंदी साहित्य में एक नई क्रांति ला रही है। लेखन, अनुवाद, संपादन, और प्रकाशन में AI की भूमिका लगातार बढ़ रही है। हालाँकि, साहित्य की आत्मा

भावनाओं में बसती है, जिसे मशीनें पूरी तरह आत्मसात नहीं कर सकती फिर भी, तकनीक और साहित्य का यह संगम हिंदी भाषा को नई ऊँचाइयाँ देने की ओर अग्रसर है।

हालाँकि तकनीक ने साहित्य को नई ऊँचाइयाँ दी हैं, लेकिन इसके कुछ दुष्प्रभाव भी हैं, जैसे साहित्य की मौलिकता पर प्रश्नचिह्न, साहित्यिक चोरी (Plagiarism) और गहरी साहित्यिक समझ का अभाव। फिर भी, यदि तकनीक का सही उपयोग किया जाए, तो यह हिंदी साहित्य के विस्तार और समृद्धि में सहायक सिद्ध होगी। तकनीक ने हिंदी साहित्य को एक नया आयाम दिया है, जिससे लेखन, प्रकाशन और पाठन की प्रक्रिया अधिक सुलभ हो गई है। यह परिवर्तन साहित्य के प्रचार-प्रसार को और अधिक सशक्त बना रहा है, जिससे हिंदी भाषा का वैश्विक प्रभाव बढ़ रहा है।

"तकनीक के स्पर्श से हिंदी साहित्य का विस्तार होगा, पर उसकी आत्मा हमेशा मानवीय बनी रहेगी।"

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. वर्मा, रमेश (2021). कृत्रिम बुद्धिमत्ता और साहित्यिक सृजन. राजकमल प्रकाशन।
2. गुप्ता, अरुण (2020). डिजिटल युग में हिंदी साहित्य. साहित्य अकादमी।
3. त्रिपाठी, सुरेश (2019). लेखन और तकनीकी क्रांति. प्रकाशन विभाग।
4. मिश्रा, अजय (2022). AI और साहित्य: संभावनाएँ और चुनौतियाँ. वाणी प्रकाशन।
5. Turing, Alan (1950). Computing Machinery and Intelligence. Mind Journal।
6. Boden, Margaret A. (2016). Creativity and Artificial Intelligence. Oxford University Press।
7. Bender, Emily M. (2021). On the Dangers of Stochastic Parrots: Can Language Models Be Too Big? ACL Journal।
8. Sudowrite AI Research Team (2022). Artificial Intelligence in Creative Writing. OpenAI Publications।
9. McCorduck, Pamela (2004). Machines Who Think. CRC Press।
10. Mitchell, Melanie (2019). Artificial Intelligence: A Guide for Thinking Humans. Farrar, Straus and Giroux।

11. OpenAI Research Team (2023). Natural Language Processing and Literary Creativity. OpenAI Journals।
12. Chomsky, Noam (2022). Language, Mind, and Artificial Intelligence. Cambridge University Press।
13. Russell, Stuart J. & Norvig, Peter (2020). Artificial Intelligence: A Modern Approach. Pearson।
14. Klein, Ezra (2023). AI, Human Creativity, and the Future of Writing. New York Times Books।
15. भटनागर, संजय (2023). हिंदी साहित्य में तकनीक का बढ़ता प्रभाव. भारतीय विद्या भवन।

शोधार्थी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

त्रिपिटक : संक्षिप्त परिचय- 2

—डॉ. विजयराज वज्राचार्य—

अभिधम्मपिटक

अभिधम्मपिटक त्रिपिटक का तीसरा पिटक या पिटारा है। 'अभिधम्म' भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित दार्शनिक उपदेशों का संग्रह है। अभिधम्म, सुत्तपिटक से भी गम्भीर एवं विशिष्ट सूत्र ग्रन्थ है। 'अभिधम्म' 'अभि' तथा 'धम्म' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'अभि' उपसर्ग का अर्थ अतिरिक्त और विशिष्ट है। 'धम्म' शब्द का अर्थ स्वभाव माना गया है। धम्म में 'सुत्तन्त-धम्म' एवं 'अभिधम्म' दो शब्द होने से धम्म शब्द परस्पर में मिले होने पर भी अभिधम्म सुत्तन्त धम्म से अतिरिक्त एवं विशिष्ट होता है– "अभि अतिरेको धम्मो अभिधम्मो'' या "अभि विसेसो धम्मो अभिधम्मो" शब्द विग्रह के अनुसार अभिधम्म हुआ है।

पिटक के सम्बन्ध में, सारांश, में बुद्धघोस (5वीं शताब्दी ई.) के अनुसार विनयपिटक आणादेसना है, सुत्तपिटक वोहारदेसना है, तो अभिधम्म परमार्थदेसना है। उसी प्रकार से विनयपिटक अधिशील शिक्षा है, सुत्तपिटक अधिचित्त शिक्षा है, तो अभिधम्म अधिप्रज्ञ शिक्षा है।

अभिधम्म में भगवान् बुद्ध के उपदेशों के विभाजन (वर्गीकरण) एवं विश्लेषण तात्त्विक एवं मनोवैज्ञानिक तरीके से की गयी व्याख्याएँ विद्यमान है।

भगवान् बुद्ध द्वारा बोधिज्ञान प्राप्ति करने के पश्चात् चौथे सप्ताह रत्नाकर चैत्य में व्यतीत करते समय अभिधम्म का चिन्तन, मनन एवं परामर्श किया गया। तदनन्तर उन्होंने अपने को जन्म देने वाली माता सन्तुषित देवपुत्र प्रमुख देवगण को तीन माह तक निरन्तर रूप से अभिधम्म का उपदेश देशना दिया। भगवान् बुद्ध द्वारा इस प्रकार से धम्मदेशना दी गयी। अभिधम्म उपदेश को संक्षेप में मनुष्यलोक में अग्रश्रावक सारिपुत्र महास्थविर के समक्ष पुनः प्रस्तुत किया। सारिपुत्र महास्थविर ने स्वयं चिन्तन, मनन एवं भावना करने के पश्चात् अपने शिष्यों को देशना दिया।

अभिधम्म देशना का प्रथम संगायन करने वाले भिक्षुओं द्वारा किये गये विभाजन के अनुसार पिटक के रूप में अभिधम्मपिटक, निकाय के रूप में खुद्दकनिकाय, अङ्ग के रूप में वेय्याकरण, धर्मस्कन्ध के रूप में 42,000 धर्मस्कन्ध हैं। ग्रन्थ के रूप में (1)

धम्मसङ्गणि, (2) विभङ्ग, (3) धातुकथा, (4) पुग्गलपञ्ञत्ति, (5) कथावत्थु (6) यमक एवं (7) पट्ठान, ये 7 ग्रन्थ हैं।

1. धम्मसङ्गणि– अभिधम्मपिटक के 7 ग्रन्थों में से धम्मसङ्गणि पहला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में परमार्थ धर्म को गणात्मक या परिप्रश्नात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। अभिधम्म का मूल आधार एवं सार से युक्त इस धम्मसङ्गणि ग्रन्थ में सभी परमार्थ धर्म को भिन्न-भिन्न तरीके से संगृहीत किया गया है।

धम्मसङ्गणी ग्रन्थ के प्रारम्भ में मातृका (विषय-सूची) प्रस्तुत की गयी है। मातृका को दो तरह से विभाजित किया है– (1) परमार्थ धर्म को तीन समूह में विभाजित किया गया त्रिक-मातृका एवं (2) परमार्थ धर्म को दो समूहों में विभाजित किया गया 'द्विकमातृका'। द्विक-मातृका को भी (क) अभिधम्म के हिसाब से द्विक-मातृका एवं (ख) सुत्तन्त में द्विक-मातृका को दो प्रकार से विभाजित किया गया है। 'त्रिक-मातृका' में कुशल-त्रिक, वेदना-त्रिक, विपाक-त्रिक आदि करके 22 त्रिक हैं। अभिधम्म में 'द्विकमातृका' में हेतुद्विक, चूलन्तरद्विक, आसवद्विक आदि 100 द्विक हैं, इसी प्रकार सुत्तन्त में विद्याभागीद्विक, विद्यूपमद्विक आदि 'द्विकमातृका' में 42 द्विक प्रस्तुत किये गये हैं। इस धम्मसङ्गणी ग्रन्थ में सम्मिलित सभी परमार्थ धर्मों की मातृका सम्पूर्ण अभिधम्म की मातृका 'सूची' है, ऐसा उल्लेख धम्मसङ्गणि-अट्ठकथा में किया गया है। "द्वावीसति तिका सतं दुकाति अयं सब्बञ्ञुबुद्धेन देसिता सत्तन्नं पकरणानं मातिका" अर्थात् 22 त्रिक, 100 द्विक सर्वज्ञ बुद्ध द्वारा उपदेशित 7 प्रकरणों की मातृका है।

ग्रन्थ के मुख्य भाग मात्रिका, त्रिक एवं द्विक को प्रधानता देकर चार कण्ड में विभाजित करके परमार्थ धर्मों के स्वरूप को विस्तृत रूप में मनोवैज्ञानिक तरीके से व्याख्या की गयी है।

1. चित्तुप्पादकण्ड– कुशल, अकुशल एवं अव्याकृत चित्त की उत्पत्ति, कारण, उक्त चित्त के मिले हुए चैतसिकों के स्वभाव को विस्तृत रूप से भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द का प्रयोग करके विचित्र रूप से वर्णन किये गये कण्ड हैं।

2. रूपकण्ड– कुशल-त्रिक अन्तर्गत अव्याकृत धर्म में लगे हुए रूपों को पहला समूह, दूसरा समूह करके ग्यारह समूहों तक विभाजित किये गये कण्ड हैं।

3. निक्खेपकण्ड– सम्पूर्ण त्रिक द्विक को न संक्षिप्त न विस्तृत रूप से वर्णन किये गये कण्ड हैं।

4. अट्ठकथाकण्ड– दिखाये गये स्वभाव धर्मों के स्वरूप का कण्ड है, इस कण्ड में सौत्रान्तिक द्विक के अलावा शेष त्रिक द्विक सभी के स्वरूप एवं स्वभाव को दिखाया गया है । अभिधम्म के सभी सार इस अर्थकथा कण्ड में संगृहीत होने के कारण यह कण्ड अभिधम्म ग्रन्थ के हृदय जैसा है, ऐसा कहा गया है।

चित्तकण्ड, रूपकण्ड, निक्खेपकण्ड और अत्थुद्धारकण्ड के साथ कुशल, अकुशल और अव्याकृत आदि परमार्थ धर्मों के स्वरूप को पूर्णपंको गणना करके दिखाया गया है।

2. विभङ्ग– इस शब्द का अर्थ है– पृथक्-पृथक् करके विभाजित करना विभङ्ग अभिधम्म पिटक का दूसरा ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ में स्कन्ध, आयतन, धातु, इन्द्रिय से लेकर 18 विभङ्गों को अलग-अलग विभाजित करके विश्लेषण किया गया है । ये 18 विभङ्ग हैं– खन्ध, आयतन, धातु, सच्च, इन्द्रिय, पटिच्चसमुप्पाद, सतिपट्ठान, सम्मपधान, इद्धिपाद, बोज्झङ्ग, मग्ग, झान, अप्पमञ्ञा, सिक्खापद, पटिसम्भिदा, ञाण, खुद्दक और धम्महदय। इन्हें 18 अध्यायों में विभाजित किया गया है।

1) खन्धविभङ्ग में– पाँच स्कन्ध, 2) आयतनविभङ्ग में बारह "आयतन" 3) धातुविभङ्ग में– 18 "धातु", 4) सच्चविभङ्ग में– 4 "सत्य" 5) इन्द्रियविभङ्ग में– 22 "इन्द्रिय" 6) पच्चयकारविभङ्ग में– 12 "पच्चयकार" 7) सतिपट्ठानविभङ्ग में– 4 "स्मृतिप्रस्थान'', 8) सम्मप्पधानविभङ्ग में– 4 "सम्यक्प्रधान" 9) इद्धिपादविभङ्ग में– 4 "इद्धिपाद", 10) बोज्झङ्गविभङ्ग में– 7 "बोध्यङ्ग", 11) मग्गविभङ्ग में– 8 "मार्ग", 12) झानविभङ्ग में– "रूपध्यान" एवं "अरूपध्यान'', 13) अप्पमञ्ञाविभङ्ग में– 4 "अप्रमञ्ञा'', 14) सिक्खापदविभङ्ग में– 5 "शिक्षापद", 15) पटिसम्भिदाविभङ्ग में– 4 "प्रतिसम्भिदा", 16) ञाणविभङ्ग में– 1 समूह से 10 समूह "ज्ञान", 17) खुद्दकवत्थु-विभङ्ग में "साधारण विषय" 18 समूह के विषय एवं 62 प्रकार के दिट्ठि एवं 18) धम्महदयविभङ्ग में– हृदय जैसे धर्म के विषय के विभाजन एवं विश्लेषण किया गया है।

3. धातुकथा– "धातुकथा" अभिधम्मपिटक के सात ग्रन्थों में से तीसरा है । इस ग्रन्थ के क्षेत्र भी विस्तृत हैं। धातु सम्बन्धी ही इसमें वर्णन नहीं किया है; ऊपर उल्लिखित के अनुसार 5 स्कन्ध, 12 आयतन, 18 धातु, 4 सत्य, 22 इन्द्रिय, प्रतीत्यसमुत्पाद, 4 सतिपट्ठान, 4 ऋद्धिपाद, 4 ध्यान, 4 अप्रमाण, 5 इन्द्रिय, 5 बल, 7 बोध्यङ्ग, 8 मार्ग, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चित्त, अधिमोक्ष और मनसिकार कुल 114 धर्म विद्यमान हैं। कौन-कौन स्कन्ध, आयतन और धातु में कौन-कौन धर्म सम्मिलित (सङ्गृहीत) वा असम्मिलित (असंगृहीत), संयुक्त (सम्प्रयुक्त) वा विपयुक्त (विप्रयुक्त) आदि हैं, इसकी

विवेचना इस ग्रन्थ में 14 अध्यायों में प्रश्नोत्तर के रूप में दर्शायी है। धातुकथा प्रकरण में 14 प्रकार की नयी मातृकायें इस प्रकार हैं–

1. संगृहीत होकर संगृहीत, 2. संगृहीत होकर असंगृहीत, 3. असंगृहीत होकर असंगृहीत, 4. संगृहीत होकर संगृहीत, 5. असङ्गृहीत होकर असंगृहीत, 6. सम्प्रयोग विप्रयोग, 7 सम्प्रयुत्त होकर विप्रयुत्त, 8. विप्रयुत्त होकर संप्रयुत्त, 9. सम्प्रयुत्त होकर सम्प्रयत्त, 10 विप्रयुत्त होकर विप्रयुत्त, 11. सङ्गृहीत होकर सम्प्रयुत्त विप्रयत्त, 12 सम्प्रयुक्त होकर सङ्गृहीत असंगृहीत, 13. असंगृहीत होकर सम्प्रयुत्त विप्रयुत्त एवं 14. विप्रयुत्त होकर संगृहीत असंगृहीत। इस धातुकथा प्रकरण का वाचन या सीधे-सीधे पाठ का परिमाण 6 भाणवार जितना हैं।

इस ग्रन्थ में विशेष रूप से स्कन्ध, आयतन एवं धातुओं को चयनित कर अन्य धर्मों के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है। जैसे कि–

प्रश्न– कितना स्कन्ध, आयतन एवं धातु में रूपस्कन्ध सम्मिलित हैं ?

उत्तर– 1 स्कन्ध, 11 आयतन एवं 11 धातु में रूपस्कन्ध सम्मिलित हैं।

प्रश्न– कितना स्कन्ध, आयतन एवं धातु में रूपस्कन्ध सम्मिलित हैं ?

उत्तर- 4 स्कन्ध, 1 आयतन एवं 7 धातु में रूपस्कन्ध सम्मिलित है। आदि

4. पुग्गलपञ्ञत्ति– पुग्गलपञ्ञत्ति अभिधम्मपिटक का चौथा ग्रन्थ है। इसमें संसार में विद्यमान व्यक्तियों का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। इसमें एकविध पुद्गल प्रज्ञप्ति से लेकर दसविध पुद्गल प्रज्ञप्ति के संग्रह का व्याख्यान है। पुग्गलपञ्ञत्ति दो शब्दों से मिलकर बना है। पुग्गल का अर्थ व्यक्ति, सत्त्व, पुद्गल, मनुष्य है, ऐसा समझते हैं, तो पञ्ञत्ति कहने से उपदेश करना, निर्देशन करना, प्रकाशन करना, वर्णन करना, स्पष्ट करना है। इसीलिए पुग्गलपञ्ञत्ति का अर्थ है व्यक्तियों के बारे में निर्देशन करना, प्रकाशन करना, दिखाना, संकेत करना तथा वर्णन करना है। व्यक्तियों के चरित्र, व्यवहार और संस्कार के अनुसार वर्गीकृत किया गया ग्रन्थ, विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के बारे में परिचित होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के आरम्भ में मातिका उद्देश में छः पञ्ञत्ति का उल्लेख किया गया है। वे हैं– 1. खन्धपञ्ञत्ति, 2. आयतनपञ्ञत्ति, 3. धातुपञ्ञत्ति, 4. सच्चपञ्ञत्ति, 5. इन्द्रियपञ्ञत्ति एवं 6. पुग्गलपञ्ञत्ति। खन्धपञ्ञत्ति में 5 स्कन्धों, आयतनपञ्ञत्ति में 12 आयतनों, धातुपञ्ञत्ति में 18 धातुएँ, सच्चपञ्ञत्ति में 4 सत्य, इन्द्रियपञ्ञत्ति में 22 इन्द्रियाँ हैं, तो पुग्गलपञ्ञत्ति में 390 प्रकार के पुद्गलों तथा 357 (घटाकर) प्रकार के पुद्गलों का वर्णन

किया गया है। इन छः पञ्ञत्तिक में से पहली 5 पञ्ञत्तिका के बारे में साधारण परिचय मात्र दे कर अन्तिम पुग्गलपञ्ञत्ति का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। पुग्गल-पञ्ञत्ति में छः मातृकाओं की प्रस्तुति देखने से अभिधम्मपिटक की विशेषता नजर आती है, तो विषयवस्तु की प्रस्तुति एवं आकार देखने से सुत्तपिटक के समान प्रतीत होता है । इस ग्रन्थ में अङ्गुत्तरनिकाय में जैसे पुद्गलों का वर्गीकरण एक से क्रमगत रूप में वृद्धि होते हुए दसवीं समूह तक में पृथक्-पृथक् किया गया है । अधिकांश सूत्र अंगुत्तरनिकाय के जैसे हैं, तथा दीघनिकाय के संगीतिसुत्त के समान मिलता है।

पुग्गलपञ्ञत्ति में दस परिच्छेद हैं। प्रत्येक परिच्छेद में व्यक्तियों को विभिन्न आधार पर सङ्ख्यात्मक आधार में अलग किया गया है । व्यक्तियों के वर्गीकरण एक से क्रमशः रूप में बढाते हुए दस तक मिला है। पहले परिच्छेद में एक-एक तरह के व्यक्तियों के समूह, दूसरे परिच्छेद में दो-दो प्रकार के व्यक्तियों के समूह, तीसरे परिच्छेद में तीन-तीन प्रकार के व्यक्तियों के समूह, पाँचवें परिच्छेद में पाँच प्रकार के व्यक्तियों के समूह हैं । उसी प्रकार दसवें परिच्छेद में दस प्रकार के व्यक्तियों के समूह का पृथक् करके वर्णन किया गया है । पुग्गलपञ्ञत्ति में व्यक्तियों के चरित्र, संस्कार, मानसिक अवस्था, व्यवहार, लौकिक और लोकोत्तर जीवनशैली को विभिन्न आधारों के अनुसार अलग करके व्यक्तियों का वर्गीकरण किया गया है।

5. कथावत्थु– इसमें तृतीय संगायन के समय सम्राट अशोक के गुरु मोग्गली-पुत्ततिस्स महास्थविर द्वारा दिये गये व्याख्यान उपदेशों का संग्रह है । इसमें अशोक-कालीन समय तक 18 सम्प्रदाय में विभक्त बौद्ध सम्प्रदाय के मत-भिन्नता का निराकरण करके विभज्जवादी के रूप में निर्णीत समीकरण दिया गया है। इस ग्रन्थ में 500 स्वमत एवं 500 परमत को मिलाकर कुल 1000 सूत्रों को संकलित किया गया है । यह कथावत्थु कथा एवं वत्थु नामक शब्द मिलकर बना हुआ है । 'कथा' शब्द में व्यक्त करने वाली बातें या वादें नामक अर्थ मिलता हैं। अथवा सत्य कारणयुक्त प्रमाण साधकों के द्वारा आपने वाद एवं तर्क को स्थिर बनाने, दूसरो के वाद या तर्क को हटाने, दबाने वाला वाद नामक अर्थ मिलता है। वत्थु का अर्थ रहना (स्थान), उत्पन्न होने वाले जगह या वस्तु के प्रतीक अर्थ निकलते हैं । दो अर्थों को जोड़कर कथावस्तु का अभिप्राय निकाला गया है, जिसका अर्थ है– कहने वाले वादों अथवा सत्य कारणयुक्त प्रमाण साधकों द्वारा आपने वाद या तर्क को स्थिर बनाने, दूसरों के वाद या तर्क को किनारे लगाना, दबाना, उत्पन्न होने वाले जगह या वस्तु।

कथावत्थु पाँचवाँ ग्रन्थ है। इस कथावत्थु में परवादी कहे जाने वाले मिथ्यावादियों के तर्क या वाद को तुलना करके रखा गया है।

भगवान् बुद्ध ने अभिधम्म की देशना करने के क्रम में धम्मसङ्गणि, विभङ्ग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञत्ति– इन चार ग्रन्थों की देशना देने के पश्चात् पाँचवीं कथावत्थु को आठ प्रकार के आधारभूत मूलसहित संक्षिप्त रूप में देशना दिया।

उन आठ प्रकार के आधारभूत मूलों में– 1. सुद्धसच्चिकट्ठ, 2. ओकाससच्चिकट्ठ, 3. कालसच्चिकट्ठ, 4. अवयवसच्चिकट्ठ हैं।

इन चार प्रकार के सच्चिकट्ठों को 1. अनुलोमपच्चनीक एवं 2. पच्चनीकअनुलोम के दो-दो प्रकार से प्रश्न किया गया है, इसलिए आधारभूत मूल आठ प्रकार का हुआ है।

इस प्रकार कथावत्थु का वर्णन विस्तृत रूप में न करके आठ प्रकार के आधारभूत मूलसहित संक्षिप्त रूप में एक भाणवार परिमाण में मात्र देशना किया था। भगवान् बुद्ध ने "भविष्य में मेरे शिष्य मौद्गलिपुत्ततिस्स भिक्षु ने बुद्धशासन के भीतर उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के शासनिक मेलों को हटाकर तृतीय संगायन के समय भिक्षुसंघ के मध्य पाँच सौ परपक्षवाद करके एक हजार वाद या तर्कों से इस कथावत्थु का पूर्णरूप में देशना करेगें'' ऐसा कहा गया था, एक भाणवारक मात्र देशना करने के पश्चात् यमक एवं पट्ठान का देशना किया गया था।

6. यमक- यमक का अर्थ युगल है। यमक का मुख्य विषय अभिधम्म में प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या करना है। इसलिए यमक को अभिधम्म का शब्दकोष भी कहा जाता है। इसमें प्रश्नोत्तर के रूप में धर्म को प्रस्तुत किया है। यमक को 10 अध्याय में विभाजित किया है। युगल प्रश्न और उत्तर रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका मुख्य विषय इस प्रकार से है–

1. मूलयमक में– कुशल, अकुशल और अव्याकृत, 2. खन्धयमक में 5 स्कन्ध, 3. आयतनयमक में– 12 आयतन, 4. धातुयमक में 18 धातु, 5. सच्चयमक में– 4 आर्यसत्य, 6. संस्कार यमक में– काय, वचन और चित्तसंस्कार, 7. अनुसययमक में– 7 अनुसय यमक 8. चित्तयमक, 9. धम्मयमक और 10. इन्द्रिययमक- 22 इन्द्रियाँ। इस प्रकार के धर्म कब, कहाँ उत्पन्न होते हैं, उनका निरोध होता है, ऐसा कहकर विस्तृत रूप में व्याख्या किया गया है। प्रायः प्रत्येक अध्याय 3 बार में विभाजित हैं– 1. पञ्ञत्तिवार, 2. पवत्तिवार और 3. परिञ्ञावार। पञ्ञत्तिवार को उद्देस एवं निद्देस के साथ अलग करके मूल विषयवस्तु प्रस्तुत किया गया है। पवत्तिवार में उप्पादवार विभाग (उत्पत्ति विभाग), निरोधवार (विनाश

विभाग) और उप्पाद निरोधवार (उत्पत्ति और विनाश सम्बन्धी विभाग) करके 3 बार में वर्गीकृत करके प्रश्न और उनके उत्तर अनुकूल या विपरीत जोड़े के रूप में प्रारम्भ से अन्त तक प्रस्तुत किया गया है।

7. पट्ठान– यह पट्ठान अभिधम्म पिटक के ग्रन्थों में गम्भीर एवं विशाल ग्रन्थ है। इसमें प्रतीत्यसमुत्पाद के व्याख्या की तरह ही 24 प्रत्ययों का विस्तृत व्याख्यान भी मिलता है । 24 प्रत्यय हैं– हेतुपच्चय, आरम्मणपच्चय, अधिपतिपच्चय, अनन्तरपच्चय, समन्तरपच्चय, सहजातपच्चय, अञ्ञमञ्ञपच्चय, निस्सयपच्चय, उपनिस्सयपच्चय, पुरेजातपच्चय, पच्छाजातपच्चय, आसेवनपच्चय, कम्मपच्चय, विपाकपच्चय, आहारपच्चय, इन्द्रियपच्चय, झानपच्चय, मग्गपच्चय, सम्पयुत्तपच्चय, विप्पयुत्तपच्चय अत्थिपच्चय, नत्थिपच्चय, विगतपच्चय और अविगतपच्चय।

अभिधम्म के सात ग्रन्थों में से सबसे बड़ा और अन्तिम सातवाँ ग्रन्थ "पट्ठान" है। इसलिए, पट्ठान प्रकरण को महाप्रकरण भी कहते हैं। पट्ठान ग्रन्थ में एक-एक विषयवस्तु को हेतुप्रत्यय के रूप में कैसे स्वभाव और धर्म का उपकार कर रहे हैं। आलम्बन प्रत्यय के रूप में कैसे उपकार कर रहे हैं, इत्यादि 24 प्रकार के प्रत्यय धर्मों के नाम का उल्लेख करके 24 प्रकार के पट्ठान नय (तरीके) के आधार से अलग कर परमार्थ धर्म का गम्भीरता से व्याख्या करने का प्रयास किया है। उसमें भी एक-एक प्रत्यय धर्म में भी तिक पट्ठान, दुक पट्ठान, दुकतिक पट्ठान, तिकदुक पट्ठान, तिकतिक पट्ठान, दुकदुक पट्ठान कहते हुए 6-6 पट्ठान को पृथग् कर उन्हें भी "अनुलोम, पच्चनीय-अनुलोम-पच्चनीय, पच्चनीय अनुलोम" कहते हुए 4 प्रकार से विभाजित करके जम्मा 24-24 प्रकार के पट्ठान का उल्लेख करके धर्म का विश्लेषण किया है। यह पट्ठान प्रकरण अन्य प्रकरणों से भी अत्यधिक गम्भीर एवं विशाल है।

अभिधम्म के इन 7 ग्रन्थों में यद्यपि अनेक गम्भीर दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन किया गया हो, तो भी संक्षेप में चित्त, चैतसिक, रूप और निर्वाण– ये 4 परमार्थ धर्म मुख्य हैं।

त्रिपिटक-ग्रन्थ का प्रकाशन

पालि त्रिपिटक संसार की विभिन्न लिपियों जैसे- बर्मी, सिंहली, थाई, कम्बोजी, रोमन एवं देवनागरी आदि में उपलब्ध हैं । भारतवर्ष में सबसे पहले देवनागरी लिपि में त्रिपिटक का प्रकाशन नालन्दा से हुआ था । बर्मा, श्रीलंका, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, बेलायत तथा भारत में अपनी अपनी भाषा में त्रिपिटक के अनुवाद हो रहे हैं। पालि टेक्स सोसायटी 100 साल पहले ही त्रिपिटक का अंग्रेजी अनुवाद कर दुनिया में प्रचार-प्रसार कर चुका है।

सन् 1970 से नव नालन्दा महाविहार से प्रकाशित पालि त्रिपिटक ग्रन्थ इस प्रकार से है– दीघनिकाय 3 भागों में, मज्झिमनिकाय 3 भागों में, संयुक्तनिकाय 4 भाग में, अंगुत्तरनिकाय 4 भाग में, खुद्दकनिकाय 9 भागों में, विनयपिटक 5 भागों में, अभिधम्म-पिटक 13 भागों में, कुल 41 ग्रन्थ हैं।

विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी से बर्मा में हुए छट्ठ संगायन के आधार पर पालि त्रिपिटक के 45 ग्रन्थ सहित अट्ठकथा, टीका, अनुटीका आदि 140 ग्रन्थ देवनागरी लिपि में सम्पादित एवं प्रकाशित हुए हैं। उसी संस्था द्वारा संपूर्ण त्रिपिटक का कम्प्युटराइज टंकण CD-ROM में देवनागरी, रोमन, बर्मी आदि लिपि में प्रकाशन होने के पश्चात् त्रिपिटक के बारे में यथार्थ सूचना मिलने में सरलता हुई है। साथ ही थाइलैण्ड के महामुकुट विश्वविद्यालय से बुद्ध वर्ष 2525 में प्रकाशित त्रिपिटक को आधार मान कर बुद्ध वर्ष 2531-32 में कम्प्युटराइज किया गया Bud Sir (Buddhist Scripture Information Retrieval) प्रकाश में आने के पश्चात् त्रिपिटक से सम्बन्धित सूचना क्षणभर में मिलने से बहुत सुविधा हुई है।

त्रिपिटक के विभिन्न ग्रन्थ विभिन्न भाषाओं में भारत, नेपाल, बर्मा, थाईलैण्ड, श्रीलंका, अमेरिका, जर्मन, इत्यादि देशों से समय-समय पर प्रकाशित होने की सूचना मिलती रहती है।

सहायक ग्रन्थ-

पालि साहित्य का इतिहास- भरतसिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, 2000

पालि साहित्य का इतिहास- राहुल सांकृत्यायन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग), राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1992

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9455695530

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

—डॉ॰ रवि गुप्त मौर्य—

हिन्दी साहित्य का वर्तमान स्वरूप इसके सतत यात्रा का परिणाम है। हिन्दी साहित्य अपनी यात्रा में अनेक पड़ाव से होकर गुजरी है। यह पड़ाव ही हिन्दी साहित्य के विभाजन का आधार है। इस विभाजन के कई आधार हैं जैसे- कालक्रम, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, साहित्यकार, सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाएँ, शासक, शासन-काल, लोक-नायक आदि।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर प्रथम लेखन का प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी ने 1839 में अपने पुस्तक 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ए ऐदुस्तानी' के माध्यम से किया है। फ्रेंच भाषा में लिखी यह पुस्तक वर्णाक्रम पर आधारित है। इस ग्रन्थ में उल्लेखित प्रथम कवि का नाम अंगद और अंतिम कवि का नाम हेमंत पंत है। दूसरा प्रयास ठाकुर शिव सिंह सेंगर ने अपनी पुस्तक 'शिवसिंह सरोज' के द्वारा सन् 1883 में किया। यह ग्रन्थ भी वर्णानुक्रम पर आधारित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'वृत्ति संग्रह' की संज्ञा दी है। इसके पश्चात् जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपने ग्रन्थ 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव नार्दन हिंदुस्तान' में सन् 1889 को सर्वप्रथम सार्थक हिन्दी साहित्य का विभाजन प्रस्तुत किया।

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का काल विभाजन-

1. चारण काल
2. धार्मिक पुनर्जागरण (15 वीं शताब्दी)
3. मलिक मोहम्मद जायसी की प्रेम कविता
4. ब्रज का कृष्ण सम्प्रदाय
5. मुगल दरबार
6. तुलसीदास
7. रीतिकाव्य
8. तुलसीदास के परवर्ती कवि
9. 18 वीं शताब्दी में हिन्दुस्तान
10. कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान
11. विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान

ग्रियर्सन ने 'चारण काल' के नव कवियों का नामोल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं- पुष्य कवि, खुमाण सिंह, केदार, कुमार पाल, अनन्यदास, चन्द्र, जगनिक, जोधराज और शारङ्गधर। ग्रियर्सन के पश्चात् मिश्र बंधुओं ने हिन्दी साहित्य को पाँच भागों में विभक्त किया–

मिश्र बन्धुओं का काल विभाजन-

1. आरम्भिक काल
   (1) पूर्व आरम्भिक काल (संवत् 700 से 1343 तक)
   (2) उत्तर आरम्भिक काल (संवत् 1344 से 1444 तक)
2. माध्यमिक काल
   (1) पूर्व माध्यमिक काल (संवत् 1445 से 1560 तक)
   (2) प्रौढ माध्यमिक काल (संवत् 1561 से 1680 तक)
3. अलंकृत काल
   (1) पूर्व अलंकृत काल (संवत् 1681 से 1790 तक)
   (2) उत्तर अलंकृत काल (संवत् 1791 से 1889 तक)
4. परिवर्तन काल (संवत् 1890 से 1925 तक)
5. वर्तमान काल (संवत् 1926 से आज तक)

उक्त काल विभाजन में प्रवृत्तियों की उपेक्षा है जिस कारण इस विभाजन को अधिक मान्यता नहीं मिली। इसलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा– "सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खण्डों में आँख मूँदकर बाँट देना – यह भी न देखना कि किस खण्ड के भीतर क्या आता है और क्या नहीं – किसी वृत संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नें अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल क्रम और प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी साहित्य का विभाजन किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल विभाजित किया है-

1. आदिकाल (संवत् 1050-1375 तक)
2. पूर्व मध्यकाल (संवत् 1375-1700 तक)
3. उत्तर मध्यकाल (संवत् 1700-1900 तक)
4. आधुनिक काल (संवत् 1900 से आगे तक)

साहित्य का पहला युग आदिकाल है। इस काल में अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत वीरगाथा काव्यों की गणना की जाती है। पूर्व मध्यकाल में निर्गुण, सगुणभक्ति के कवियों और जायसी आदि प्रेममार्गी कवियों के साहित्य की गणना की जाती है। उत्तर मध्यकाल में रीति रचनाकारों के ग्रन्थों की गणना है और आधुनिक काल में भारतेन्दुकालीन, द्विवेदीकालीन और छायावादी साहित्यों की गणना की जाती है। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' और 'भारतीय हिन्दी परिषद् के इतिहास' में उक्त मत का समर्थन किया है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी ने भी इसका समर्थन किया।

आधुनिक काल को उपकालों में विभाजित किया गया है-

1. भारतेन्दु युग/पुनर्जागरण काल (1850 ई० से 1900 ई० तक)
2. द्विवेदी युग/जागरण-सुधार काल (1900 ई० से 1918 ई० तक)
3. छायावाद युग (1918 ई० से 1936 ई० तक)
4. प्रगतिवाद युग (1936 ई० से 1943 ई० तक)
5. प्रयोगवाद युग (1943 ई० से 1953 ई० तक)
6. नई कविता युग/नवलेखन युग (1953 ई० से अब तक)

छायावाद के विकास पर आचार्य महावीर प्रसाद युग के कविता तथा बंग्ला काव्य का प्रभाव रहा। श्री मुकुटधर पाण्डेय ने सर्वप्रथम 'छायावाद' नाम दिया। मुंशी प्रेमचन्द के नेतृत्व में 1936 ई० में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। 1943 ई० के पश्चात् काव्य-क्षेत्र में संक्रान्ति का समय था जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोगवाद जैसी नवीन काव्यधारा का प्रादुर्भाव हुआ। 'नई कविता युग' का नामकरण 1953 ई० में डॉ० जगदीश गुप्त के द्वारा सम्पादित 'नई कविता' नामक पत्रिका से हुआ है, जो सतत् प्रवाह्यमान है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य को प्रवृत्तियों के आधार पर निम्न प्रकार से विभाजित किया है-

1. वीरगाथाकाल (संवत् 1050-1375 तक)
2. भक्तिकाल (संवत् 1375-1700 तक)
3. रीतिकाल (संवत् 1700-1900 तक)
4. गद्यकाल (संवत् 1900 से आगे तक)

इस विभाजन में साहित्य के प्रवृत्तियों की प्रतिध्वनि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के धुर विरोधी हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यहाँ तक कहा है कि– रामचन्द्र शुक्ल ने जिन ग्रन्थों को आधार बना कर काल-विभाजन किया है वे सारे ग्रन्थ ही आधारहीन हैं। इन ग्रन्थों का कोई इतिहास नहीं है। आचार्य शुक्ल द्वारा 'आदिकाल' को 'वीरगाथा काल' के रूप में दिये गये सम्बोधन से आचार्य द्विवेदी सहमत नहीं थे। द्विवेदी के अनुसार आदिकाल की कुछ प्रतिनिधि रचनाएँ इस प्रकार से हैं- 1. विजयपाल रासो, 2. हम्मीर रासो, 3. कीर्तिलता, 4. कीर्तिपताका, 5. खुमाण रासो, 6. बीसलदेव रासो, 7. पृथ्वीराज रासो, 8. जयमयंक जसचंद्रिका, 9. जयचंद प्रकाश, 10. परमाल रासो (आल्हा खण्ड), 11. खुसरो की पहेलियाँ, 12. विद्यापति पदावली। इनमें से अधिकतर रचनाएँ अनुपलब्ध हैं और कुछ की प्रामाणिकता पर संदेह है। विद्यापति की पदावली, अमीर खुसरो के पद आदि वीर रस की रचनायें नहीं है।

इसके पश्चात् आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' में हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का काल विभाजन-

1. आदिकाल (1000 ई॰ से 1400 ई॰ तक)
2. पूर्व मध्यकाल (1400 ई॰ से 1700 ई॰ तक)
3. उत्तर मध्यकाल (1700 ई॰ से 1900 ई॰ तक)
4. आधुनिक काल (1900 ई॰ से अब तक)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने काल विभाजन में पूरी शताब्दी को लिया है और संवत के स्थान पर ईसवी सन् लिया है। इसके पश्चात् डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने 1938 में अपने ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में हिन्दी साहित्य का विभाजन प्रस्तुत किया।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा का काल विभाजन-

1. सन्धिकाल (संवत् 750 से 1000 तक)
2. चारणकाल (संवत् 1000 से 1375 तक)
3. भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700 तक)
4. रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900 तक)
5. आधुनिक काल (संवत् 1900 से अब तक)

डॉ॰ रामकुमार वर्मा ने वीरगाथा काल के स्थान पर चारण काल नाम दिया। चारणकाल और वीरगाथा काल में कोई मौलिक अन्तर नहीं है, क्योंकि वीरगाथाओं के रचयिता ही चारण कहलाते थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ संवत् 750 से माना है और संवत् 750 से 1000 तक की अवधि को एक नया संबोधन 'संधिकाल' दिया। इसके पश्चात् डॉ॰ गणपति चन्द्रगुप्त ने सन् 1965 में अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में वैज्ञानिक तरीके से हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किया, परन्तु अनेक इतिहासकार और विद्वान् इनसे पूर्णरूपेण सहमत नहीं है।

डॉ॰ गणपति चन्द्रगुप्त का काल विभाजन-

1. प्रारम्भिक काल (1184 ई॰ से 1350 ई॰ तक)
2. मध्यकाल
   (1) पूर्व मध्यकाल (1350 ई॰ से 1500 ई॰ तक)
   (2) उत्तर मध्यकाल (1500 ई॰ से 1857 ई॰ तक)
3. आधुनिक काल (1857 ई॰ से 1965 ई॰ तक)

इसके पश्चात् डॉ॰ नागेन्द्र नें अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल विभाजन को प्रस्तुत किया है।

डॉ॰ नागेन्द्र का काल विभाजन-

1. आदिकाल (ईसवी की सातवीं शताब्दी के मध्य से चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक)
2. भक्तिकाल (चौदहवीं शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक)
3. रीतिकाल (सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक)
4. आधुनिक काल (उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से अब तक)-
   (1) पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल)- 1857 ई॰ से 1900 ई॰ तक
   (2) जागरण काल (द्विवेदी काल)- 1900 ई॰ से 1918 ई॰ तक
   (3) छायावाद काल- 1918 ई॰ से 1938 ई॰ तक
   (4) छायवादोत्तर काल-
      i. प्रगति-प्रयोग काल (1938 ई॰ से 1953 ई॰ तक)
      ii. नवलेखन काल (1953 ई॰ से अब तक)

हिन्दी साहित्य के अधिकांश विद्वानों ने डॉ॰ नागेन्द्र के काल विभाजन को अन्य की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और समीचीन माना है।

यदि सरहपाद को हिन्दी का पहला कवि माने तो हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ की सीमा निश्चित करने में सुविधा होगी। अध्ययन की सुविधा एवं सुगमता के लिए हिन्दी साहित्य का काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है-

1. आदिकाल (750 ई॰ से 1350 ई॰ तक)
2. भक्तिकाल (1350 ई॰ से 1650 ई॰ तक)
3. रीतिकाल (1650 ई॰ से 1850 ई॰ तक)
4. आधुनिक काल (1850 ई॰ से अब तक)
   (1) भारतेन्दु युग (पुनर्जागरण काल)- 1850 ई॰ से 1900 ई॰ तक
   (2) द्विवेदी युग (जागरण-सुधार काल)- 1900 ई॰ से 1918 ई॰ तक
   (3) छायावाद युग- 1918 ई॰ से 1936 ई॰ तक
   (4) प्रगतिवाद युग- 1936 ई॰ से 1943 ई॰ तक
   (5) प्रयोगवाद युग- 1943 ई॰ से 1955 ई॰ तक
   (6) नई कविता (नवलेखन)- 1955 ई॰ से अब तक

उक्त विभाजन में यह विशेषता है कि आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल को शताब्दियों में उल्लेखित किया गया है, इसके विपरीत आधुनिक काल के प्रवृत्तियों में बदलाव समय के साथ बहुत तेजी हुआ। इसका मुख्य कारण भौतिक सुविधाओं (प्रकाश की सुविधा, पत्रकारिता का प्रचार-प्रसार, लेखन क्षेत्र में अनेक सुविधाओं का मिलना आदि) की उपलब्धता और राजनीतिक वातावरण में तेजी से परिवर्तन था। जिसके परिणाम स्वरूप भारतेन्दु युग लगभग 50 वर्ष, द्विवेदी युग लगभग 20 वर्ष तथा अन्य छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का काल सिमित रहा। नवलेखन काल 1955 से प्रारम्भ होकर सतत् चल रहा है। नवीन रचनाकार अनेक अवसरों पर युग-परिवर्तन का उद्घोष कर चुके हैं, परन्तु साहित्यिक प्रवृत्तियों के समानता के कारण अभी तक कोई नवीन युग की अवधारणा नहीं बन पायी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 16वाँ संस्करण, सन्- 1968।
2. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल संस्करण, सन्- 1952।

3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ॰ रामकुमार वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, सन्-1958।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक- डॉ॰ नागेन्द्र, डॉ॰ हरदयाल, मयूर बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्- 2018।
5. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्- 1986।

शोध-सहायक
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8009123271

मौन

—डॉ. शुचिता शर्मा—

मौन एक साधना है, अपने आप में ज्ञान की अवस्था है। मौन स्थितप्रज्ञ अवस्था है। मौन का अर्थ है विचारशून्य होना। मौन का अर्थ अधिकतर बाह्य रूप में लिया जाता है। माना जाता है चुप रहना, बोलना बंद रखना शायद इसी को मौन मान लिया जाता है। लेकिन मौन होने का अर्थ है विचारों को मौन करना, उन सभी विचारों को मस्तिष्क में न आने देना, जिससे मस्तिष्क की विचारशीलता बनी रहे। अपने मस्तिष्क की क्रियाशीलता को मौन करना ही असल में मौन है, अपने आपको स्थितप्रज्ञ कर लेना, शून्य में होना। एक प्रकार से अपने आप को ठीक करने के लिए, अपने मन को ठीक करने के लिए एवं स्वस्थ शरीर बनाए रखने के लिए चिकित्सा है मौन। आज की इस संघर्षमय जिंदगी के शोर में मौन अहम भूमिका निभाता है। प्रत्येक मनुष्य को कुछ समय के लिए मौन होना उसके मस्तिष्क को ऊर्जावान बनाता है। जैसे- गाड़ी के लगातार चलने पर थोड़ा उसे विराम देना उसकी ऊर्जा को अधिक बलवान करता है, उसी प्रकार मौन आपके शरीर को, आपके मस्तिष्क को ऊर्जा देता है। इसलिए मौन एक चिकित्सा है। हर मनुष्य को कुछ समय के लिए स्थितप्रज्ञ में होना आवश्यक है, तभी उसे अच्छे संस्कार वाले मस्तिष्क का सहयोग मिलेगा ।

"मौन" एक गहरी और बहुअर्थी संकल्पना है, जो कई संदर्भों में प्रयुक्त होती है। यह केवल शब्दों की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि भावनाओं, विचारों और आत्मचिंतन का एक माध्यम भी हो सकता है।

मौन के विभिन्न आयाम:

1. आध्यात्मिक मौन: ध्यान, साधना और आत्मचिंतन का हिस्सा, जहाँ व्यक्ति स्वयं से जुड़ता है।
2. भावनात्मक मौन: जब शब्द भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं, तब मौन अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है।
3. सामाजिक मौन: किसी स्थिति पर प्रतिक्रिया न देना या विरोध में मौन रहना।
4. रचनात्मक मौन: कलाकार, लेखक, और चिंतक अपने विचारों को संजोने के लिए मौन धारण करते हैं।

रचनात्मक मौन एक ऐसी अवस्था है, जहाँ सृजनात्मकता भीतर ही भीतर विकसित होती है। यह केवल चुप रहने की स्थिति नहीं है, बल्कि वह गहराई है जहाँ विचार, कल्पनाएँ और भावनाएँ आकार लेती हैं।

रचनात्मक मौन के पक्ष:

1. **विचारों का परिष्करण:** जब हम मौन में होते हैं, तो हमारे मन में नए विचार जन्म लेते हैं और हम उन्हें बेहतर ढंग से समझ पाते हैं।
2. **गहरी संवेदनशीलता:** कला, साहित्य, संगीत, और चित्रकला में मौन कलाकार को अपने भीतर की संवेदनाओं से जुड़ने में मदद करता है।
3. **ध्यान और आत्मचिंतन:** एकाग्रता बढ़ाने के लिए मौन आवश्यक है, जिससे रचनात्मकता को दिशा मिलती है।
4. **अव्यक्त का संप्रेषण:** कई बार शब्दों से अधिक मौन विचारों और भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन जाता है, जैसे—कवि की कविता के पीछे का अज्ञात मौन, चित्रकार की कूची की निःशब्द भाषा।
5. **अराजकता से मुक्ति:** बाहरी कोलाहल से दूर रहकर एक कलाकार अपनी आत्मा की सच्ची आवाज़ सुन सकता है।

कला के संदर्भ में मौन एक गहरी और जटिल अवधारणा है, जो कलाकार के रचनात्मक अनुभव, आत्म-अभिव्यक्ति और दर्शक की व्याख्या से जुड़ी होती है। कला में मौन केवल शाब्दिक चुप्पी नहीं, बल्कि रंगों, रेखाओं, बनावट और प्रतीकों के माध्यम से एक संवाद है।

कला में मौन की भूमिका

1. रचना से पहले का मौन:

कोई भी महान कलाकृति अचानक नहीं बनती। कलाकार अपनी संवेदनाओं को समेटता है, विचारों को गहराई से महसूस करता है, और अपने अनुभवों को आत्मसात करता है। यह मौन उसकी आंतरिक यात्रा का हिस्सा होता है।

2. अभिव्यक्ति का मौन:

कई बार कलाकार अपनी भावनाओं को सीधे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाता, लेकिन उसकी कला बोलती है। थिंकर्स का कहना है कि "Silence is also a language" – मौन भी एक भाषा है, जो रंगों, आकृतियों और प्रतीकों के माध्यम से प्रकट होती है।

उदाहरण के लिए, थंका चित्रकला में रंगों का चयन और आकृतियों की संरचना गहरे आध्यात्मिक मौन को प्रकट करती है।

3. कलाकृति और दर्शक के बीच मौन संवाद:

जब हम किसी पेंटिंग, मूर्ति या किसी अन्य कला रूप को देखते हैं, तो कलाकार की भावना हमारे भीतर अनकही भाषा में गूंजती है। यह मौन संवाद दर्शक को आत्मनिरीक्षण और अनुभव करने का अवसर देता है।

लियोनार्डो दा विंची की मोनालिसा की रहस्यमयी मुस्कान इसका एक अच्छा उदाहरण है—वह कुछ कहती भी है और नहीं भी।

4. मौन और अमूर्त कला:

अमूर्त कला (Abstract Art) में मौन की भूमिका और अधिक गहरी हो जाती है। इसमें कोई स्पष्ट कथानक नहीं होता, लेकिन फिर भी यह दर्शक के मन में भावनाओं और विचारों को जाग्रत करता है।

मार्क रोथको या वासिली कांडिंस्की की पेंटिंग्स में रंगों का संयोजन मौन की गूंज को दर्शाता है।

5. आध्यात्मिकता और मौन:

विशेष रूप से भारतीय और तिब्बती कला में मौन का एक गहरा संबंध ध्यान और साधना से है।

थंका चित्रों में बुद्ध, पद्मसंभव या तारा की छवियाँ ध्यान मुद्रा में होती हैं, जहाँ मौन आत्मज्ञान का प्रतीक बन जाता है।

निष्कर्ष

कला में मौन केवल शांति नहीं, बल्कि एक सृजनात्मक ऊर्जा है। यह कलाकार के भीतर विचारों की तरंगें पैदा करता है और दर्शक के मन में एक अनकहा संवाद रचता है। यह मौन ही कला को अनंत व्याख्याओं से जोड़ता है।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 8808419048

समाज में कृतज्ञता का महत्त्व

—डॉ. अरुण कुमार राय—

कृतज्ञता का अर्थ यह स्वीकारना है कि जो है बहुत अच्छा है अर्थात् अच्छाई की पुष्टि करना, उसे स्वीकार करना है तथा यह समझना की अच्छाई के स्रोत हमसे बाहर विद्यमान हैं जैसे प्रकृति, रिश्ते – नाते आदि। शोधकर्ता सामाजिक आयाम को कृतज्ञता के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानते हैं। वर्तमान शोध इसे "मानव जाति की नैतिक स्मृति" कहते हैं। इस नैतिक स्मृति का प्रयोग कर परिवार रूपी इकाई से लेकर विश्व पटल पर शांति एवं सौहार्द की स्थापना की जा सकती है। कृतज्ञता के बारे में दलाई लामा ने उसे विश्लेषित करते हुए कहा है-

"खुश रहने के लिए सबसे पहले हमारे अंदर आंतरिक संतुष्टि होनी चाहिए; और आंतरिक संतुष्टि हमारी सभी इच्छाओं को पूरा करने से नहीं आती; बल्कि हमारे पास जो कुछ भी है उसके लिए कृतज्ञ होने और उसकी सराहना करने से आती है।"

~ दलाई लामा

कृतज्ञता मानव समाज में प्रचलित सभी धर्मों में विभिन्न प्रकार से परिभाषित एवं प्रचलित है : (यहाँ एक तथ्य विनम्रतापूर्वक स्पष्ट करना है कि यहाँ कृतज्ञता की चर्चा लौकिक जगत के सन्दर्भ में है, न कि दार्शनिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर)

बौद्ध धर्म में कृतज्ञता आश्रित उत्पत्ति की अवधारणा पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है अर्थात् बौद्धों के लिए सब कुछ अन्योन्याश्रित और परस्पर जुड़े हुए हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। यह भाव ही हमें कृतज्ञता के प्रति सदैव सजग करता है।

जैन धर्म में मिच्छामी दुक्कड़म, जिसे क्षमापना दिवस के रूप में मनाया जाता है, न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक हैं, बल्कि मानवीय सभ्यता का एक मूलभूत हिस्सा भी हैं। इस अवसर पर हम अपने द्वारा जान-बूझकर या अनजाने में की गई गलतियों के लिए क्षमा मांगते हैं और दूसरों को क्षमा करते हैं।

यहूदी धर्म में धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति दिन की शुरुआत मोदेह अनी से करते हैं अर्थात वर्तमान जीवन जो ईश्वर का आशीर्वाद है, उस परमात्मा को धन्यवाद देना।

ईसाई धर्म में भोजन, परिवार, जीवन जो सभी ईश्वर द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद है, उसके लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

इस ब्रह्माण्ड के प्रकृति की गोद में अनगिनत जीव-जंतु एवं पेड़-पौधे उपस्थित हैं, जिनका अपना एक निश्चित गुण-धर्म, कर्तव्य बोध से युक्त एक समूह है; जो प्रकृति में एक निश्चित काल-अवधि तक अपना जीवन चक्र पूरा कर प्रकृति पुंज में विलीन हो जाते हैं। यह समस्त जीव जगत प्रकृति के संतुलन में अपना निर्धारित योगदान बिना किसी स्व-सुख कामना के करते हैं।

इस सन्दर्भ में संत रहीम कहते हैं :-

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहि न पान,
कही रहीम पर काज हित सम्पति संचहि सुजान।

अर्थात वृक्ष और सरोवर प्रकृति से पोषित पल्लवित हो प्रकृति के दूसरे जीव जगत का पोषण करते हैं परन्तु अपने लिए कुछ भी संचित नहीं करते है, सज्जन पुरुष के भी यही गुण हैं।

भारतीय सभ्यता इसी गुण-ग्राह्यता को अपने में समाहित कर जीवन यापन करती थी। प्रकृति से जो लेती थी, आवश्यकतानुसार ही लेती थी और उसके प्रति एक कृतज्ञता भाव सदा ही अंतस में रहता था, यहाँ तक की यदि किसी वृक्ष से कुछ लेना है तो उससे अनुमति लेकर ही उसका उपयोग करते थे तथा प्रकृति के उस वरदान को सदैव देवतुल्य मान कर विशेष तिथि पर कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु पूजा आदि का आयोजन करते थे।

परन्तु जब हम आज के मानव समूह को देखते हैं तो पाते हैं कि वह निरंतर विकास क्रम से एक तथाकथित सभ्य सामाजिक प्राणी बन अपने को अन्य जीव जगत से श्रेष्ठ समझ कर जीवन को निरंतर सुख की अन्तर्निहित कामना के साथ जीता है। अपने सुख तथा वर्चस्व की कामना पूर्ति के लिए सिर्फ प्रकृति का विदोहन करता है। वह निरंतर नवीन शोधों के माध्यम से सिर्फ अपने सुख के साजो-सामान जुटा रहा है, जो वास्तव में सिर्फ दुःख के आधार हैं। वह यह भी नहीं सोचता है कि जिस तन हेतु वह प्रकृति के प्रति इतना निष्ठुर है वह शरीर तो वास्तव में प्रकृति के पंच महाभूत से बना है - **छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा**। परन्तु यह सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित हो गया है। यह अन्तर्निहित सुख की कामना उसके समस्त दुःख एवं मानसिक व्यथा तथा मनोशारीरिक व्याधियों का कारण बनता है। विश्व आज कितने संघर्षो से गुजर रहा है, यह हम सभी अच्छी तरह समझते हैं, चाहे वह यूक्रेन-रूस युद्ध हो या गाजा-ईसराइल-ईरान युद्ध। एक तथ्य सदैव सभी संघर्षो में मिलता है कि विवाद उन्हीं से होता है जिससे कभी अपनापन रहा हो अर्थात्

दोनों पक्ष यदि एक दूसरे के प्रति नैतिक स्मृति को अपने चेतन में लाकर संवाद करें तो संघर्ष विराम हो जाये।

विश्व पटल को छोड़ यदि हम अपने परिवार, रिश्तेदार, धर्म जाति, विद्यालय, कार्यालय आदि कहीं भी देखें या महसूस करें तो हम पाते हैं कि इन सभी में एक कारण अवश्य मिलेगा वह है कृतज्ञता के भाव का अभाव। हम मनुष्य अपने को एक सामजिक प्राणी मानते हैं, समाज का निर्माण हम मनुष्य ही करते हैं परन्तु हम भूल जाते हैं कि मेरा स्वयं का अस्तित्व कुछ भी नहीं है। हमारा यह तन, ज्ञान, पद-प्रतिष्ठा, स्वास्थ्य, भोजन-पानी, खुशी आदि सब कुछ जो है उसमें अनगिनत लोगों का योगदान एवं प्रकृति की अदृश्य उर्जा का सहयोग है। जिसे हम पूर्णतः विस्मृत कर स्वयं की उपलब्धि मानते हैं। यदि हम वर्तमान में मिले सुख को सिर्फ विश्लेषित कर लें तो हम पायेंगे कि इसमें मेरा योगदान तो बहुत कम है वरन् अन्य का योगदान मुझसे कहीं बहुत ज्यादा है। अधिकारी कोई इसलिए है कि उसके अंतर्गत कार्य करने वाले उसकी आज्ञा मानने वाले हैं और कर्मचारी यदि कोई है तो उसके कार्य की जिम्मेदारी लेने वाला उसे निर्देशित करने वाला कोई अधिकारी है। यदि एक दूसरे के योगदान के प्रति कृतज्ञता का भाव आ जाये तो निश्चित रूप से वह व्यक्ति या समूह नव ऊर्जा से भर स्वयं को तथा समाज को सही दिशा दे सकता है।

भारतीय समाज में कृतज्ञता अर्थात् ऋणी भाव के रूप अत्यंत व्यापक एवं परम्पराओं में ऋणत्रय (ऋषिऋण, देवऋण व पितृऋण) के रूप में प्रचलित है। भारतीय संस्कारों से पोषित जितने भी देश, समाज या धर्म हैं वे सभी भाव प्रधान हैं, जहाँ अभिव्यक्ति से अधिक आन्तरिक भावों से भरकर स्वयं के व्यवहार में उतारना और करना है। पश्चिमी संस्कारों में भी कृतज्ञता ज्ञापित करना एक प्रचलित व्यवहार है। वहाँ 28 नवम्बर को थैंक्स गिविंग डे भी मनाते हैं। परन्तु एक तथ्य जो हमसे उन्हें पूर्णतः अलग करता है, वह यह है कि पश्चिम के संस्कारों से पोषित सभ्यता प्रदर्शन आधारित है और हमरा भाव आधारित। प्रदर्शन आधारित कृतज्ञता से भी शांति सौहार्द एवं प्रेम तथा विश्वास बढ़ता है लेकिन एक मुखौटे की तरह। इसको सरलता से अगर समझना है तो पश्चिम में व्यक्तित्व के लिए पर्सनालिटी (परसोना अर्थात् मुखौटा) शब्द है और हमारे यहाँ व्यक्तित्व।

वर्तमान में वैश्वीकरण एवं अर्थ प्रधान आधारित समाज की अवधारणा के कारण सब कुछ व्यापार है। सारे रिश्ते नाते, परम्परा, धर्म, ज्ञान बिक रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप सभी सद्गुणी भाव मूल्य कहीं न कहीं सिर्फ शास्त्रों एवं परम्परा के माध्यम से जीवित हैं, क्योंकि हमारे अन्दर के भाव का अभाव हो चुका है।

वर्तमान में मानवीय संवेदना, सौहार्द, प्रेम, रिश्ते, करुणा, रस, सब कुछ पश्चिम के आकर्षण में लगभग समाप्त हो रहे हैं। लेकिन यदि मानव समाज में कृतज्ञता के भाव को पुनर्जीवित कर सकें तो संभवतः हम मानवता से ओतप्रोत एक मानव समाज की परिकल्पना को साकार कर सकते हैं।

पारंपरिक ज्ञान के पुनर्स्थापना का यह कार्य दिवास्वप्न सरीखा है, परन्तु तिब्बती संस्थान की मूल आत्मा जो अवधारणा पर अवलंबित है, जिसे हमारे ऋषि तुल्य माननीय कुलपति महोदय प्रातः स्मरणीय ऋषि श्रेष्ठ मनीषी विश्व वन्दनीय विद्वान एवं संस्थान के संस्थापक परम आदरणीय प्रोफ़ेसर सामदोंग रिन्पोछे जी के आशीर्वाद से बीजारोपित करना चाहते हैं।

हमारे मानव मष्तिस्क में अक्सर दो प्रकार की स्मृतियों के विचार प्रवाहित होते हैं- एक नकारात्मक एवं दूसरा सकारात्मक या नैतिक एवं अनैतिक। यदि हम जिस किसी भी घटना या व्यक्ति के प्रति आक्रोशित या अनैतिक हो रहे हैं, यदि हम उसके द्वारा पूर्व में किये गए अच्छे व्योवहार को सिर्फ याद कर ले तो शायद बहुत कुछ बिगड़ने से बच जाये, चाहे वह व्यक्ति हो ,समाज हो या देश हो। कृतज्ञता के भाव को यदि आप परीक्षित करना चाहें तो आप जिस किसी से बहुत दुखी या आक्रोशित हैं उसके वर्तमान व्यवहार थोड़ी देर के लिए अलग रख दें और उसके साथ बिताये उन लम्हों को याद करें जिसमे एक दूसरे प्रति प्रेम और सहानुभूति थी। उसकी स्मृति मात्र ही आप के विचारों की दिशा बदल देगी और आप सकारात्मकता से ओतप्रोत हो जायेंगे।

कृतज्ञता की बगिया के कुछ पुष्प, जिन्हें पुष्पित एवं पल्लवित कर हम स्वयं एवं समाज का हित कर सकते हैं।

कृतज्ञता को यदि हम वास्तव में अपने जीवन में या समाज अपना सकें तो हम निश्चित ही सामाजिक, मानसिक, भावनात्मक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक आदि विभिन्न आयामों में अत्यन्त सकारात्मक परिणाम पा सकते हैं।

कृतज्ञता और भावनात्मक लाभ

1. खुशी के स्तर में-
2. मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में-
3. हमारे विचारों में सकारात्मक भाव के विकास में-
4. स्वयं के आत्म-सम्मान की वृद्धि में-
5. आत्महत्या के विचार और प्रयास में कमीं-

कृतज्ञता और सामाजिक लाभ

6. लोगों के आपसी प्यार में वृद्धि-
7. पारिवारिक रिश्ते को बेहतर बनाने में
8. प्रभावी मित्रतापूर्ण व्यवहार बनाने में
9. सामाजिक स्वीकार्यता में वृद्धि
10. तनवात्मक परिस्थिति में पारिवारिक रिश्तों की मधुरता में-

कृतज्ञता और व्यक्तित्व लाभ

11. हमें अधिक आशावादी बनाने में
12. अपनी आध्यात्मिकता बढ़ाएँ
13. अधिक दानशील बनने में
14. भौतिकवाद को कम करने में
15. आशावादिता वृद्धि में

कृतज्ञता और आजीविका

16. हमें अधिक प्रभावी प्रबंधक बनाने में
17. अधीरता कम करने में तथा निर्णय लेने की क्षमता में
18. काम के वास्तविक को अर्थ खोजने में
19. व्यापार वृद्धि में
20. काम से संबंधित मानसिक स्वास्थ्य में सुधार और तनाव कम करना

कृतज्ञता और शारीरिक स्वास्थ्य

21. अवसादग्रस्त लक्षणों को कम करने में
22. अपना रक्तचाप कम करने में
23. अच्छी नींद में
24. शारीरिक श्रम वृद्धि में
25. समग्र शारीरिक स्वास्थ्य में

व्यक्ति सुधर में कृतज्ञता की भूमिका

26. लोगों को मादक द्रव्यों के सेवन से उबरने में
27. हृदय सम्बंधित रोगों को कम करने में
28. अवसाद को कम करने में

इस सन्दर्भ में संस्थान का सोवा-रिग्पा विभाग कुछ मरीजों पर अवसाद एवं कृतज्ञता पर प्रारम्भिक स्तर पर शोध में गुणात्मक सुधार पाया, जिसे वह कृतज्ञता आधारित चिकित्सा (Gratitude Based Therapy) कहता है।

सोवा-रिग्पा संकाय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 9452922660

विस्थापन की अंतहीन पीड़ा

—डॉ. सुशील कुमार सिंह—

केंद्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय जो अब केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के नाम से जाना जाता है। 2019 में सहायक प्रोफेसर, हिंदी के रूप में सेवा करने का अवसर मिला। पहले दिन विश्वविद्यालय में प्रवेश करते ही एक अलग तरीके की शांति तथा सुकून का एहसास हुआ। ऐसा लगा जैसे बनारस में रहते हुए भी मैं बनारस में नहीं हूं। एक अलग तरह की संस्कृति, एक अलग तरह का परिवेश। परिसर में प्रवेश करते ही आपको यह एहसास हो जाएगा कि यह कोई सामान्य भूमि नहीं है। जिस प्रकार की पॉजिटिव एनर्जी यहां दिखती है उससे यह एहसास हो जाता है कि इस धरती पर कभी भगवान बुद्ध के चरण जरूर पड़े होंगे। उन्होंने इस भूमि पर बैठकर तपस्या जरूर की होगी। साहित्य का शिक्षक होने के नाते तथा गीत, संगीत, कविता में रुचि होने के कारण बच्चों से स्वाभाविक जुड़ाव हो गया। कक्षाएं शुरू हुई तो हिंदी की कक्षा में केवल दो विद्यार्थी ही मिले, क्योंकि एजुकेशन विभाग में हिंदी विषय के रूप में इसी साल प्रारंभ हुई। हालांकि अब हिंदी में विद्यार्थियों की संख्या 20-25 हो गई है। शुरू-शुरू की कक्षाओं में, मैं जाता तो बस विषयगत होकर रह जाता क्योंकि मुझे यह भी दिखाना था कि मैं अपने सिलेबस पर पूरी तरह फोकस्ड हूं। हालांकि साहित्य के शिक्षक का काम केवल पाठ्यक्रम पढ़ाना भर नहीं होता है बल्कि विद्यार्थी के भीतर सामाजिक समझ और उनके दायित्वबोध को भी विकसित करना होता है। कक्षा के दौरान विद्यार्थी हमेशा समभाव में रहते, ऐसा लगता कि उनके जीवन में न उतार है न चढ़ाव, न यति है न गति। मैं महसूस करता था कि मुझमें और विद्यार्थियों में एक सांस्कृतिक खाई है। धीरे-धीरे मुझे महसूस होने लगा कि जब तक मैं विद्यार्थियों के मस्तिष्क से ज्यादा उनके हृदय की गहराई में नहीं उतरूंगा फिर वह सांस्कृतिक खाई दूर नहीं हो पाएगी। उसी समय यह भी महसूस हुआ कि भाव और संवेदना के द्वारा दुनिया की सारी सांस्कृतिक खाई को पाटा जा सकता है। धीरे-धीरे मैंने अपनी शैली द्वारा विद्यार्थियों को यह पूरा एहसास करा दिया कि मैं भी उनके परिवार का ही एक हिस्सा हूं। जब भी कक्षा शुरू होती तो कुछ विद्यार्थी कक्षा में एकदम शांत भाव से मुझे सुनते। उनके चेहरे पर एक अलग तरह की गंभीरता दिखती। मैं उनसे संवाद करना चाहता तो भी उनकी प्रतिक्रिया इतनी गंभीर होती कि मैं समझ नहीं पाता। धीरे-धीरे जब उनसे जुड़ता गया, थोड़ा-बहुत उनका भरोसा जीत सका तथा उनके पारिवारिक जीवन को जानने का प्रयास किया तो उसमें से कुछ छात्रों ने अपनी कहानी बताई। उनकी आपबीती कहानी सुनकर अब भी कलेजा भर आता है। जब वे यह

बताते हैं कि चाइना द्वारा पूरे तिब्बत पर कब्जा कर लेने के बाद वहां का जीवन कितना कठिन हो गया? कैसे तिब्बत-आजादी की मांग करने पर अब तक हजारों आंदोलनकारियों को वह मौत के घाट उतार चुका है? 1959 में 14वें तिब्बती धर्मगुरु परम पावन दलाई लामा के भारत में आकर बस जाने से स्थितियां और भी भयावह हो गयीं। वहां पर न कोई लोकतंत्र है न ही अधिकार। इसलिए हर माता-पिता चाहते हैं कि हमारे बच्चे किसी तरह भारत पहुंच जायें, जहां से पढ़ लिखकर वे तिब्बत आजादी की आवाज को पूरी दुनिया में उठा सकेंगे। वे यह भी बताते हैं कि महीनों पैदल चलते हुए, भूखे-प्यासे, नदी-नालों तथा बर्फीले पहाड़ों, दर्रों को पार करते हुए भारत कैसे पहुंचे? वे यह भी बताते हैं कि दिन भर कैसे पहाड़ों के बीच छुपे रहते ताकि कोई चीनी सैनिक उन्हें देख ना ले? जब रात होती तो वे अंधेरे में 20-25 की टोली बनाकर अपने मुखिया के साथ कैसे निकलते? कैसे कई दिन भूखे-प्यासे रहकर वे नेपाल के रास्ते हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला शहर पहुंचें? उन्होंने यह भी बताया कि इस यात्रा में कैसे कई लोग रास्ते में ही मर गए? मेरे कई ऐसे विद्यार्थी हैं जिन्होंने लगभग 15-20 साल से अपने मां-बाप को नहीं देखा, क्योंकि उनके मां-बाप तिब्बत में हैं और वह तिब्बत नहीं जा सकते। चीनी प्रतिबंध होने के कारण वे अपने ही देश से बेगाने हो गए। अब जब यही छात्र भारत देश और यहां की सरकार के प्रति आभार प्रकट करते हैं और कहते हैं कि इस देश में आकर कभी लगा ही नहीं कि हम अपने देश में नहीं हैं, तो ऐसा महसूस होता कि इस देश की मिट्टी में एक अलग तरह की खुशबू है जो सबको अपनी तरफ़ खींचती है। इसीलिए इस देश ने बड़े-बड़े महापुरुषों को जन्म दिया है। पूरे विश्व में भारत देश और सरकार के प्रति यह आस्था और विश्वास हमारी वसुधैव कुटुम्बकं के सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाती है। अब जब कभी भी अकेले मैं इन घटनाओं के बारे में कल्पना करता हूं तो एक अलग तरह की छटपटाहट और बेचैनी महसूस करता हूं। मैं महसूस करता हूं कि इस प्रकार के विस्थापन के दर्द को मुझे या मेरे बच्चों को झेलना पड़ता तो किस पीड़ा से गुजरना पड़ता? लोग कह सकते हैं, संवेदनशील व्यक्ति इस बात को समझ सकता है ...शायद सच हो लेकिन समझना और महसूस करना दो अलग बातें हैं...

हाँ नहीं तो..!!

"जाकी पाँव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।"

सहायक प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8005304374

सेवा, समभाव और सौहार्द : राष्ट्र निर्माण के आलोक में

—दीपंकर त्रिपाठी—

अभिवादनशीलस्य नित्यवृद्धोपसेविनः,
चत्वारितस्यवर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।।

जो अभिवादनशील है और सदा बड़ों की सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, यश और बल में हमेशा वृद्धि होती रहती है। प्राथमिक शालाओं में पढ़ाया जाने वाला यह श्लोक बच्चों में सेवा और अभिवादन के प्रति एक प्रेरणा का संचार करता है। यह एक वास्तविकता है कि हमारे भारतीय चिंतन की परम्परा में स्व के बजाय पर के हित की बात हमेशा से ही कही गयी है। इस भारतीय ज्ञान के आलोक में कि; हमारा या किसी भी जीव का अस्तित्व अन्य अनेक जीवों और कारकों पर आश्रित है, और यह कि अपने आप में कोई भी जीव स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखता; पर-हित या पर-सेवा एक तरह से आत्म-हित या आत्म-सेवा ही है।

जब हम पर-सेवा में तत्पर होते हैं तो हमारे अन्दर सहानुभूति, दया और सहयोग के गुणों का विकास होता है, जिससे हमारे चित्त की मलिनता मिटती है तथा उसमें सकारात्मकता का भाव जन्म लेता है। सेवा के माध्यम से हम अपने समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं जैसे गरीबी, अशिक्षा या स्वास्थ्य सेवाओं की कमी का समाधान प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम सेवा का यह अर्थ लें कि दूसरों के दुःख या तकलीफ के मौके पर हमने क्या मदद की; तो सेवा का यह एक अधूरा अर्थ ही होगा, हालाँकि यह सेवा भी परम सेवा ही है, फिर भी; यदि हम यह दृष्टि में रखें कि हमें जो कार्य मिला है, हम उसका निष्ठापूर्वक निष्पादन कर रहे हैं, तो यह भी हमारी राष्ट्र के प्रति सेवा के अन्तर्गत ही माना जाएगा।

प्रायः दृष्टिगोचर होता है कि कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के उपरान्त अनेक लोगों में अपने से जुड़े रहे लोगों या समुदायों के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा हो जाता है। इसी प्रकार उच्च कुल अथवा संभ्रान्त परिवार में जन्म प्राप्त हो जाने या प्रतिष्ठित व्यक्तियों से संपर्क हो जाने के कारण अनेक लोग अपने सामान्य पूर्व संपर्कों या संबंधों को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। यह कदापि उचित नहीं है। सभी का अपनी-अपनी जगह विशेष महत्त्व है। चर-अचर जगत् के सभी अवयवों का समान महत्त्व है। इसीलिए तो रहीमदास ने लिखा-

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, का करि सकै तलवारि।।

बड़ों को देख कर, छोटों को बिसार मत दीजिये क्योंकि जहाँ पर सुई काम आती है, वहाँ तलवार क्या ही कर सकती है। सद्भाव या समभाव को लेकर हमारे भारतीय चिंतन की इतनी सुंदर अभिव्यक्ति मनुष्य को आत्म-निरीक्षण करने पर मजबूर कर देती है। यहीं पर यह बात भी जोड़ना समीचीन होगा कि न सिर्फ मनुष्यों बल्कि अन्य सभी प्राणियों तथा प्रकृति और पर्यावरण के साथ भी हमारा समभाव होना चाहिए। सब एक-दूसरे पर निर्भर हैं। उनका आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है। यदि हम अपने पर्यावरण या प्रकृति से छेड़छाड़ करते हैं तो प्राकृतिक विभीषिका हमें भी छोड़ती नहीं। यह किसी से छिपा नहीं है कि बाढ़, भूस्खलन, सूखा और भूकम्प जैसी समस्याएँ आज किस विकराल रूप में हमारे सामने आ रही हैं। भौतिक विकास, औद्योगिक विकास या प्रतियोगी विकास या देखा-देखी विकास या दिखावे के विकास की अन्धी दौड़ ने हमारी सरल एवं पर्यावरणानुकूल जीवन शैली को सुविधाभोगी एवं जटिल बना दिया है। इसके कारण पर्यावरण के प्रति हमारा दृष्टिकोण उपेक्षात्मक हो गया। वृक्षों की कटाई, भूजल का दोहन, पर्वतों-पत्थरों का भेदन, कृषि में रसायनों का प्रयोग, जैविक ईंधन का अधिकाधिक प्रयोग एवं विनाशकारी हथियारों के अधिकाधिक संग्रह की हमारी चेष्टाओं ने हमारी पीढ़ी के सामने जीवन का संकट उत्पन्न कर दिया है।

विकास के भारतीय मानदण्डों को भुलाकर स्थापित किये गये इस कृत्रिम विकास ने आने वाली पीढ़ियों के अस्तित्व पर संकट पैदा कर दिया है। आज संसार की अनेक समस्याएँ दूसरों के प्रति सद्भाव की कमी के कारण ही हैं। व्यक्ति की सोच और उसका हित चिन्तन अपने परिवार, अपने समाज और अपने देश तक सीमित होकर रह गया है और इसी सोच या भाव के कारण असन्तुलन की स्थिति पैदा होती है, जो झगड़े का कारण बनती है और व्यक्तिगत दुःख का भी कारण बनती है। सार्वजनिक या सार्वभौमिक हित में ही हमारा हित है या हमारा सुख है, इस सिद्धांत को हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत पहले ही जान लिया था, तभी तो कहा –

अयं निजः परोऽवेति, गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा है, यह दूसरे का है ऐसा विवेक रखने वाले लोग क्षुद्र बुद्धि के होते हैं। जिनका चरित्र उदार होता है वे तो पूरी वसुधा या पृथ्वी को ही अपना कुटुम्ब मानते हैं।

सद्भाव को और गहराई से समझने के लिए पहले हमें भाव पर थोड़ा ध्यान देना होगा कि आखिर भाव क्या है? एक दृष्टि से विचार करें तो हम दो प्रकार के जगत् में रहते हैं-

भौतिक जगत् और भाव जगत्। भौतिक जगत् तो वह है जहाँ हम कर्म करते हैं, जहाँ हम रहते हैं, जहाँ हम कुछ बनाते और कुछ बिगाड़ते हैं, अर्थात् यह समग्र संसार जिसका साक्षात्कार करते हैं हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा। कुछ लोग इसे मिथ्या जगत् या बाह्य जगत् भी कहते हैं। और एक दूसरा होता है भाव जगत्। इसे ही आध्यात्मिक जगत् या आन्तरिक जगत् भी कहते हैं। भाव जगत् का विस्तार असीम है। यह हमारे हृदय में या मन में उठने वाले भावों का संयुक्त रूप है। वास्तव में हम भौतिक जगत् में रहते हुए भी जीते भाव जगत् में ही हैं। हमारे मन में उठने वाले विभिन्न प्रकार के भाव जैसे ईर्ष्या, द्वेष, राग, तृष्णा, सुख, दुःख, क्रोध, उत्साह इत्यादि सभी भाव जगत् के अंग हैं। यही भाव नियंत्रित करते हैं हमारे भौतिक जगत् के क्रिया-कलापों को। आप विचार कर के देखें तो पायेंगे कि आपके सभी बाह्य क्रिया-कलाप आन्तरिक जगत् से आने वाले निर्देशों के अनुसार ही होते हैं। हम अपने अधिकतर कार्य सुख की लालसा, क्रोधवश, रागवश, ईर्ष्यावश, करुणावश करते हैं जो कि सभी भाव जगत् के ही अंग हैं।

जिस प्रकार हमारे अन्दर भाव जगत् में उथल-पुथल होती है, उसी तरह हमारे भौतिक जगत् या बाह्य जगत् में भी उथल-पुथल बनी रहती है, क्योंकि बाह्य जगत् में होने वाले कर्म आन्तरिक जगत् के मानसिक भावों से ही नियन्त्रित होते हैं। स्पष्ट है कि बाह्य जगत् की शान्ति या सन्तुलन मनुष्य के आन्तरिक जगत् में रहने वाली शान्ति या सन्तुलन पर ही निर्भर करेगा। अर्थात् हमारे आन्तरिक जगत् के भाव जितने शान्त या सन्तुलित होंगे, हमारा आचरण भी उतना ही शान्त और सन्तुलित होगा जो सुख का कारण बनेगा। अभ्यास के द्वारा जब हम अपने मन या चित्त की गति को समझने लगते हैं, तो इसी के साथ हम अपने कर्मों की गति को भी समझने लगते हैं, कर्मों के पीछे के कारण को समझने लगते हैं, सद्कर्मों के कारण को भी समझने लगते हैं और असत् कर्मों के हेतु या कारण को भी जानने लगते हैं। जब हमारे अन्दर शुभ कर्म और अशुभ कर्म तथा शुभ कर्म का कारण और अशुभ कर्म का कारण जानने का विवेक पैदा हो जाता है अर्थात् जब हम कारण को स्पष्ट रूप से देखने की, पहचान करने की या साक्षात्कार करने की क्षमता हासिल कर लेते हैं तो हमारे अन्दर से अपने और पराये का भेद मिटने लगता है, क्योंकि हम यह भली प्रकार समझने लगते हैं कि कर्म चाहे स्वयं के द्वारा किया गया हो या पराये के द्वारा, उसके पीछे के कारण दोनों में समान हैं और वह है सुख की चाह। यह ज्ञान प्राप्त होने के बाद पर के प्रति भी भ्रातृत्व-भाव पैदा होता है क्योंकि यह समझ में आने लगता है कि दोनों के अस्तित्व का जनक और दोनों के कर्म-पथ का प्रेरक एक ही है और वह है सुख की चाह या तृष्णा। इस

भ्रातृत्व-भाव के उत्पन्न होने पर व्यक्ति को दूसरे के कष्ट भी अपने कष्ट जैसे ही प्रतीत होने लगते हैं और वह दूसरे के कष्ट को मिटाने के लिए वैसा ही प्रयास करने लगता है जैसा वह स्वयं अपने कष्ट को मिटाने हेतु करता। इस प्रकार जन्म लेती है करुणा। यही है समभाव।

मनुष्य अपनी लालची बुद्धि या तृष्णा के कारण हमेशा कुछ न कुछ भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के चक्कर में पड़ा रहता है, किन्तु सच्चाई यह है कि उसकी लालसा, चाह या तृष्णा कभी भी पूरी नहीं होती। इस कारण वह आजीवन अभावग्रस्त या दुःखी महसूस करता है और मृत्यु के समय सब कुछ छूटने की सच्चाई जानकर या तो भयग्रस्त होता है अथवा इस सच्चाई को पहले न समझ पा सकने के लिए पश्चात्ताप करता है।

त्याग में ही सुख है, इस सिद्धांत के चलते ही तो हमारे पूर्वजों ने बताया –

ईशावास्यामिदं सर्वं, यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः, मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

इस जगत में जो कुछ भी है, उसमें ईश्वर का वास है। इसलिये उनका उपभोग त्यागपूर्वक करना चाहिए (अर्थात् संग्रहण नहीं करना चाहिए) और दूसरे का धन कभी नहीं लेना चाहिए।

हमारे देश के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, जिन्हें लोग प्यार से बापू कहते हैं, ने कहा – "यह पृथ्वी हमारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है किन्तु हमारे लालच की नहीं।" जब हमारे मनोभाव में समभाव होगा तब हमारे अन्दर व्यक्तिगत सुख की चाह कम हो जायेगी। संग्रह की भावना कम हो जायेगी। स्वार्थ लोलुपता कम हो जायेगी। हमारे कर्मों की दिशा बदल जायेगी। हमारे विचारों में संकीर्णता के बजाय व्यापकता का स्थान बढ़ेगा। फलतः हमारे कर्मों के उद्देश्य में व्यापकता आएगी। मनुष्य सर्व-जन-हित या सर्व-जन-सुख के लिए कार्य करेगा। जब ऐसा होगा तो अपने आप आपसी वैमनस्य कम होगा। यही है सौहार्द। सौहार्द और त्याग एक-दूसरे के पूरक हैं। एक का बढ़ना दूसरे को बढ़ाता है और एक का घटना दूसरे को घटाता है। जिस प्रकार ममतावश एक माँ अपनी संतान के हित के लिए अपना सब-कुछ कुर्बान करने को तत्पर रहती है, उसी प्रकार आपसी सौहार्द होने पर मनुष्य सामाजिक हित की पूर्ति हेतु व्यक्तिगत स्वार्थ के त्याग के लिए सदा तैयार रहता है। किसी भी देश, अंचल या समाज के विकास के लिए व्यक्तिगत हितों की बलि नितान्त आवश्यक होती है।

यदि हम अपने देश के संदर्भ में विचार करें तो पाते हैं कि एक शक्तिशाली मानव संसाधन, विशाल प्राकृतिक सम्पदा, उच्च-स्तरीय पारम्परिक ज्ञान-राशि के होते हुए भी हम

कहीं कहीं, न सिर्फ़ भौतिक समृद्धि की दिशा में पिछड़े हुए नज़र आते हैं, वरन् आपसी शांति एवं एकता के क्षेत्र में भी संघर्षरत नज़र आ रहे हैं। इसके पीछे का कारण आपसी सौहार्द की कमी ही प्रतीत होता है। व्यक्तिगत स्वार्थ-लोलुपता के चलते बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने एवं उन्हें सम्पन्न करने के लिए अरबों रुपये की राशि व्यय करने के उपरांत भी हम आशातीत सफलता प्राप्त करने में असफल हो रहे हैं, जबकि नए-नए जन्मे और छोटे-छोटे राष्ट्र भी आपसी सौहार्द और अनुशासन के आधार पर समृद्धि के उच्च स्तरीय मानदण्ड स्थापित कर रहे हैं। अपने एवं देशवासियों के स्वाभिमान में वृद्धि के लिए हम अपने प्राचीन ज्ञान-कोश से उदाहरण तो बहुत उठाते हैं, किन्तु भोगवादी प्रवृत्ति एवं व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के उद्देश्य में उन पर अमल करना भूल जाते हैं, जिससे हमारी विकास योजनाएँ दीर्घावधि चलती हैं, उनमें श्रम, समय और धन का अपव्यय होता है और फलतः विकास की दौड़ में हम पीछे ही रह जाते हैं।

आवश्यकता है कि सेवा, समभाव और सौहार्द जैसे गम्भीर शब्दों के व्यापक तात्पर्य को आत्मसात करते हुए देशवासी राष्ट्र तथा समाज के हित में सन्नद्ध हो जाएँ अन्यथा अपनी अर्थवत्ता खोते हुए ये शब्द ग्रन्थों और साहित्य तक सिमट कर ही रह जाएँगे। हमारी भारतीय चिन्तन की मजबूत ऋषि परम्परा ने विकास के जो सूत्र और कुंजियाँ हमारे हाथों में सौंपी हैं, उनसे हम जटिल से जटिल समस्या रूपी तालों को खोल सकते हैं, साथ ही व्यक्तिगत, सामाजिक, देशिक एवं जागतिक दीर्घकालीन हितों को साध सकते हैं।

भवतु सर्वमंगलम्। जय हिन्द। जय जगत्॥

वरिष्ठ सहायक, कुलपति कार्यालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415600692

प्राकृतिक स्वरूप, संस्कृति एवं मानव-जीवन

—एस. पी. सिंह—

प्रकृति का स्वरूप अत्यन्त मनोहारी और अद्भुत होता है। इसकी सौन्दर्यता का बखान कितना ही किया जाय, फिर भी कम है। समय-समय पर समस्त ऋतुओं के बदलते रहने से जो प्राकृतिक स्वरूप बनता और बदलता है, वह मन को आह्लादित कर देता है। ऐसा स्वरूप कहीं थोड़ा ज्यादा तो कहीं थोड़ा कम, किन्तु यह सर्वत्र देखने को मिलता है। कहा गया है कि सभी ऋतुओं का राजा वसन्त ऋतु है। यह ऋतु ऐसी है, जिसमें प्रकृति का सौन्दर्य स्वरूप प्रत्येक मौसम से अधिक प्रभावशाली और सबके मन को भाने वाला होता है। समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तथा मानव सदैव हर मौसम से लाभान्वित होते रहते हैं। इन्हीं ऋतुओं के बदलने से ही सभी जीवों में भी बदलाव होता है, जो समय के साथ-साथ दिखाई देता है। ऐसी कई ऋतुओं का प्राकृतिक सौन्दर्य स्वरूप वाला वातावरण विशेषकर हमारे भारतवर्ष में ही देखने को मिलता है।

इस संसार में सूर्य, चाँद, तारे, नदियाँ, पहाड़, समुद्र, झरना, कन्दरायें, पेड़-पौधे, वनस्पतियाँ, वन-उपवन, फल-फूल-पल्लव, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, मानव आदि अनगिनत वस्तुएँ प्रकृति को सुशोभित कर रही हैं। ये सभी वस्तुएं प्रकृति की आभूषण हैं, जिनसे प्राकृतिक सौन्दर्य और स्वरूप आकर्षक लगता है। वस्तु कोई भी हो, उसकी आकृति जितनी सुन्दर होती है, यदि वह उसके अनुरूप विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हो जाती है, तो फिर और भी अच्छी लगने लगती है।

प्रकृति का समय-चक्र स्वतः संचालित होता है, जिसमें प्रतिदिन सुबह-शाम, दिन-रात की बेला में अलग-अलग तरह-तरह का वातावरण बनता रहता है। यही प्रत्येक क्षण का वातावरण सभी प्राणियों के तन-मन में पृथक्-पृथक् रूप में ऊर्जा का संचार करता है, जिससे प्राणियों को विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं।

जिस प्रकृति की गोद में हम जन्म लिये हैं, पल रहे हैं, बढ़ रहे हैं, खेल रहे हैं, कूद रहे हैं तथा जीवन में उसका सुख भोग रहे हैं, उसने हमारा हर तरह से ख्याल रखा है। जैसे जन्म देनेवाली माँ स्वयं की चिन्ता न करते हुए अपनी सन्तान के प्रति जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त देख-रेख, पालन-पोषण एवं सुरक्षा प्रदान करती रहती है। वैसे ही प्रकृति भी हमारी माँ की ही भाँति हर तरह से हमारा ख्याल रखती है और हमें सदैव पालती-पोषती है। प्रकृति के गर्भ में

हर तरह की बहुमूल्य सम्पदा विद्यमान है, जिसे वह हमें निरन्तर प्रदान करती रहती है। इसलिए जिस माँ ने हमारे लिये इतना कुछ किया है, तो हमारा भी यह दायित्व बनता है कि हम भी उसके प्रति निरन्तर समर्पित रहें, उसकी देख-रेख करें, जिससे उसे किसी भी प्रकार की स्वयं के द्वारा क्षति न पहुँचे। साथ ही, दूसरों के माध्यम से भी पहुँचने वाली हानि को रोकें तथा उसे सुरक्षा प्रदान करें। इस प्रकार उसके समूल सौन्दर्य स्वरूप को सुरक्षित एवं संरक्षित रखा जा सकता है।

यदि हम सभी लोग स्वयं के साथ-साथ उस प्रकृति के प्रति भी ध्यान देंगे, संवेदनशील रहेंगे, तो निश्चित ही प्रकृति और स्वयं को पहुँचने वाली हानि से काफी हद तक बचे रहेंगे। जब प्राकृतिक सन्तुलन सुरक्षित रहेगा, वातावरण स्वच्छ बना रहेगा, तब सभी जीव-जन्तु एवं मानवप्राणी अनेक प्रकार की आपदाओं एवं बीमारियों की चपेट में आने से बचे रहेंगे। कई तरह की गन्दगी फैलने से जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण के द्वारा प्राकृतिक वातावरण दूषित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मांस-भक्षण के लिए अनेक प्रकार के छोटे-बड़े जीव-जन्तुओं को मारकर खाने एवं मादक पदार्थों का सेवन करने से नाना प्रकार के असंख्य एवं असाध्य रोग नये-नये रूपों में पैदा हो जाते हैं। एक संक्रामक रोग खत्म नहीं होता, दस पैदा हो जाते हैं। इसी भाँति अनगिनत रोगों की उत्पत्ति अनगिनत वायरस या कीटाणुओं के द्वारा होती रहती है।

मांस हम क्यों खाते हैं- स्वाद लेने के लिये, ताकत के लिये या शरीर का मांस बढ़ाने के लिये ? इन सभी सवालों का जवाब यह है कि हम बिना मांस खाये केवल शाकाहारी भोजन तथा अन्य खाद्य पदार्थों का सेवन करके यह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि इससे भी बेहतर स्वास्थ और शरीर बलवान बना सकते हैं। जरा सोचिये- जो मांस हम खाते हैं स्वाद के लिये, वह स्वाद आता कहाँ से है ? यह स्वाद प्रकृति द्वारा प्रदान किये गये अनेक तरह के मसालों को डालने से ही आता है। यदि ये मसाले न डाले जायें तो कोई स्वाद खाने का नहीं मिलेगा। ये मसाले जब हम किसी शाकाहारी सब्जी में डालकर पकाते हैं तो उसका स्वाद क्या इससे कम होता है। कभी-कभी लोग कहते भी हैं- 'यह तो सब्जी एकदम मीट की तरह बनी है', कभी तो कुछ यह भी कहते हैं- 'यह तो सब्जी इतनी अच्छी बनी है कि इसके आगे मीट फेल'।

आप यह भी विचार करके देखें कि कितने तरह के जानवर ऐसे हैं, जो मांस नहीं खाते। जैसे- हाथी मांस नहीं खाता। वह घास, पत्ते, टहनियाँ, जड़ें, फल आदि को खाकर कितना

विशाल काय वाला हो जाता है, जिसकी ताकत का अंदाजा सभी लोग लगा सकते हैं। इसी भाँति घोड़ा मांस नहीं खाता, लेकिन वह कितना बड़ा ताकतवर होता है। यह भी हम सभी जानते हैं। इसी प्रकार और भी कई जानवर हैं, जो शाकाहारी होते हुए भी बहुत बलशाली और विशाल शरीर वाले होते हैं, जैसे- गैंडा, भैंस, बैल, ऊँट, जिरॉफ आदि।

स्वाद की बात की जाय तो तरह-तरह का स्वाद नाना प्रकार की प्राकृतिक खाद्य वस्तुओं से मिलता है, जिनमें कुछ चीजें प्राकृतिक रूप से पकी हुई, तो कुछ कच्ची ही खाकर लोग उनका आनन्द लेते हैं। कुछ वस्तुओं को अनेक प्रकार के व्यंजनों के रूप में पकाकर खाते हैं, जिसका स्वाद दूसरी तरह का होता है। इस तरह प्रत्येक चीज का स्वाद सभी प्राणीजन लेते हैं। स्वाद के अतिरिक्त प्रकृति द्वारा प्रदान की गई अनगिनत वस्तुएँ- फल, फूल, पत्ती, अनाज, साग-सब्जी, जड़ी-बूटी आदि के ग्रहण करने से जो हमें अनगिनत लाभकारी गुण प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा स्वाद और अनगिनत गुणों का आनन्द मांसाहारी भोजन से कभी नहीं मिल सकता, केवल शाकाहारी (सात्त्विक) भोजन से ही प्राप्त हो सकता है।

इसी प्रकार मादक पदार्थों का सेवन करने से क्या आनन्द मिलता है ? कुछ खास नहीं, केवल नशा ही मिलता है। नशा ऐसा होता है, जिसकी आदत पड़ जाने पर व्यक्ति उसका आदी बन जाता है। यह आदत ऐसी होती है, जो आसानी से नहीं छूटती। अधिक सेवन करने वाले लोग अधिकांशतया बीमार पड़ जाते हैं। कितने ऐसे भी होते हैं, जो इसका शिकार बन जाते हैं। यदि विचार करें तो आप देखेंगे कि धन-सम्पत्ति और पैसों की कितनी बरबादी होती है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति का अमूल्य शरीर है, वह भी बर्बाद हो जाता है। क्या यही मनुष्य का जीवन है ? शायद उन्हें यही नहीं मालूम होता कि वास्तविक जीवन क्या है? जीवन जीने का तरीका क्या है ? हमारा इस संसार में जन्म लेने का उद्देश्य क्या है ? इस संसार में मानव जीवन प्राप्त करने के बाद जीवन को संवारने के लिये हमें क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, क्या खाना चाहिये, क्या पीना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, कैसे नहीं रहना चाहिये। इन सारे सवालों के जवाब क्या हैं, उनके बारे में शायद ही कोई विचार करे, फिर जीने की बात तो अलग है।

व्यक्ति की आदत या आचरण जैसा शुरू से बन जाता है, फिर आगे चलकर जीवन पर्यन्त वह वैसा ही करता है। इसलिये खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार आदि धर्म और संस्कृति के नैतिक सिद्धान्तों के अनुकूल होना चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षा एवं संस्कार जीवन

की प्रारम्भिक अवस्था होती है। यह घर से लेकर स्कूल तक के सफर में जैसा वातावरण, संस्कार और शिक्षा बच्चे को प्राप्त होने लगती है, वह उसी रूप में ढलने लगता है।

कुम्हार जब कोई मिट्टी का बर्तन बनाता है, तब शुरू से ही उसकी मजबूती, बनावट, सुन्दरता, आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि पर विचार करता है। यह सब उसके उद्देश्य और उपयोगिता को देखते हुए निर्धारित करता है। बिना उद्देश्य और उपयोगिता निर्धारित किये किसी भी चीज का आविष्कार नहीं होता। यदि किसी तरह हो भी जाय, तो फिर उसकी स्थिति भी वैसी ही होती है। जब कोई योजना बनायी जाती है, तो सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धारित करने के साथ-साथ अन्ततः सकारात्मक परिणाम स्वयं के अनुकूल प्राप्त हो, इस पर विचार अवश्य किया जाता है।

जीवन के किसी भी कार्य-क्षेत्र में योजनानुसार कार्य सम्पादित होने के उपरान्त स्वयं द्वारा किये गये कर्म के अनुसार उसका परिणाम स्वतः सामने आता है। मनुष्य जब कोई भी कार्य करने के लिये योजना बनाता है, तब उसके लिये रास्ते दो ही होते हैं- एक तो यह जो अनुचित मार्ग प्रशस्त करता है तथा दूसरा वह जो उचित मार्ग का चयन करता है। जैसे अनजाने में कोई गलती हो जाती है या स्वयं द्वारा गलत कार्य हो जाता है, तो उसका परिणाम भी सामने गलत ही आता है। इसी भाँति जान-बूझकर जब कोई व्यक्ति अनुचित कार्य करता है, तो भी उसका परिणाम अनुचित ही होता है। इसी तरह अनजाने में जब कोई कार्य सही हो जाता है या फिर जान-बूझकर उचित कार्य किया जाता है तो अन्ततः उसका परिणाम भी उचित ही होता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जब हम कोई कार्य सोचकर कुछ करते हैं, तो बाद में हो कुछ और जाता है। यह सही और गलत दोनों स्थितियों में होता है। परिणाम जो भी प्राप्त होता है, वह निर्धारित समयानुसार पूर्व या वर्तमान में किये गये कर्म के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है।

कोई भी कर्म करने से पहले यह अवश्य ध्यान देना चाहिये कि यह धर्म के अनुकूल है भी कि नहीं। जब बिना विचार किये तथा सत्य और असत्य को जाने बगैर जीव कर्म करता है, तब सब अव्यवस्थित हो जाता है। कभी कुछ सही होता है तो कभी कुछ गलत। इसलिए जो प्राणी धर्म, कर्म, नियम-संयम, विधि-विधान और समय के अनुसार समस्त प्रकार के कार्यों का निष्पादन करता है, उसका मार्ग उत्तम होता है। वही सही दिशा की ओर ले जाता है। इस प्रकार निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति होती है, कामयाबी के मार्ग खुलते हैं, पद-प्रतिष्ठा और यश की प्राप्ति होती है।

दुःख का नाम सुनने और उसे भोगने में अन्तर होता है। इसी तरह सुख की भी स्थिति होती है। इनको परस्पर भोगने के बाद ही इनके बारे में ठीक से जाना जा सकता है। इसी भाँति जीवन के विभिन्न पहलुओं में क्षण-क्षण उत्पन्न होने वाले हानि-लाभ, व्याधि, बीमारी, आपत्ति, क्लेष आदि को भोगने के पश्चात् ही उनके बारे में सही ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में- बचपन, जवानी और बुढ़ापा को भोगने के बाद ही पता चलता है कि वह कैसा होता है।

हमारा जीवन जितना ही सात्त्विक होगा, प्रकृति के अनुकूल रहेगा, उतना ही हम अनेक तरह की उपजती घातक बीमारियों एवं व्याधियों से बचे रहेंगे। जब ऐसा होगा तो हम निरोगी एवं स्वस्थ रहेंगे। जब स्वस्थ रहेंगे, तब हम लम्बी अवस्था को प्राप्त करेंगे। सौ वर्ष से भी ज्यादा उम्र तक जीने वाले लोगों की खास विशेषता पहले के समय में यही होती थी। उनका रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, नियम-संयम, आहार-विहार सब उत्तम होता था। उत्तम जीवनशैली होने के कारण ही आगे चलकर यह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग बना।

यहाँ की भारतीय कला, दर्शन, संस्कृति, सभ्यता, प्राकृतिक सौन्दर्य, वातावरण सम्पूर्ण राष्ट्र में मानव-जीवन का आधार एवं पद्धति धर्म और संस्कृति के अनुकूल रही है। समय के अनुसार परिवर्तन प्रत्येक वस्तु में होता है, ऐसा होना स्वाभाविक है। हमें सदैव समय और समाज के साथ चलना भी चाहिए। समय के अनुसार जीवन-यापन के क्षेत्र में जो उचित प्रतीत हो, उसे अपनाना चाहिये, जिससे उन्नति के क्षेत्र में हम सदैव अग्रसर रहें। इसके अतिरिक्त हमारी जो मूलभूत सांस्कृतिक विरासत है, वह सदैव सुरक्षित एवं सरक्षित बनी रहे, उसके प्रति हमें सदैव सजग रहना चाहिये। क्योंकि जो वृक्ष होता है, वह तभी तक सुरक्षित रहता जब तक उसकी जड़ें मजबूत बनी रहती हैं।

प्रकाशन सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8173885582

स्पीति घाटी का इतिहास और संस्कृति

—जिन्पा ज़ाछो—

मध्य भूमि के रूप में जानी जाने वाली स्पीति घाटी तिब्बत और भारत के बीच बसी है और इसलिए स्पीति घाटी की संस्कृति हिंदू धर्म और तिब्बती बौद्ध धर्म का एक मिश्रण है। स्पीति घाटी में रहने वाले लोगों का जीवन गुरु पद्मसंभव की शिक्षाओं से अत्यधिक प्रभावित है, जिनके बारे में माना जाता है कि उन्होंने इस पूरे क्षेत्र में बौद्ध धर्म की शुरुआत की थी। अतः उन्हें दूसरे बुद्ध के रूप में भी जाना जाता है।

लाहौल और स्पीति घाटी में मौजूद ज़्यादातर मठों में उन्हें गुरु के रूप में पूजा जाता है और तिब्बत के बगल में स्थित होने के कारण पूरी घाटी की जड़ें तिब्बती बौद्ध धर्म से जुड़ी हुई हैं।

स्पीति प्राचीन झांग झुंग साम्राज्य का हिस्सा था। तिब्बतियों के घाटी में प्रवेश के साथ ही बौद्ध धर्म का विकास हुआ, लेकिन झांग झुंग संस्कृति अपने आदिवासी रीति-रिवाजों और शामानी प्रथाओं के साथ अलग-अलग रूपों में जीवित रही, जिसने सदियों से हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म की संस्कृतियों के साथ खुद को आत्मसात किया।

प्राचीन व्यापार मार्गों के साथ इसकी रणनीतिक स्थिति ने विविध संस्कृतियों के समामेलन को जन्म दिया है, इसलिए यह ऐतिहासिक स्मारकों, मठों और प्राचीन कलाकृतियों की विरासत के रूप में विकसित हुआ है जो पूरी तरह से तिब्बती बौद्ध धर्म पर आधारित हैं। स्पीति स्वदेशी समुदायों का घर है जिन्होंने अपने सदियों पुराने रीति-रिवाजों और परंपराओं को बहुत श्रद्धा के साथ संरक्षित किया है। जटिल अनुष्ठानों से लेकर रंग-बिरंगे त्योहारों तक, दैनिक जीवन का हर पहलू यहाँ की भूमि और इसकी सांस्कृतिक विरासत से गहरा जुड़ाव दर्शाता है।

लाहौल स्पीति में मठ -

स्पीति घाटी के स्थानीय लोगों की आस्था बहुत मज़बूत है, जिसे महाभारत और महायान बौद्ध धर्म से प्रेरणा और आत्मविश्वास प्राप्त होता है। हिंदू और बौद्ध देवता यहाँ एक साथ समाहित हैं और सद्भाव में रहते हैं। स्पीति घाटी की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत एक चट्टान की तरह है जहाँ कई दर्शन मिलते हैं, परस्पर क्रिया करते हैं और सद्भाव में रहते हैं।

हिंदू और बौद्ध दोनों संस्कृतियों के इस तरह के समावेश का एक बड़ा उदाहरण हिमाचल प्रदेश के लाहौल घाटी, मंडी जिले, त्रिलोकीनाथ मंदिर और रिवालसर में दिखाई देता है। धार्मिक महत्व के ये दोनों स्थान बौद्ध और हिंदू दोनों ही धर्मावलंबियों द्वारा समान रूप से पूजनीय हैं, जो स्पीति घाटी में अद्वितीय और विविध संस्कृति का प्रमाण है।

स्पीति घाटी में भोजन और संस्कृति

मोमो, स्वादिष्ट थुकपा, सुगंधित बटर टी इत्यादि भोजन स्पीति घाटी के स्वदेशी लोगों के सरल जीवन का आईना है। आजीविका की दृष्टि में स्पीति अत्यन्त कठोर घाटी है, जो साल के अधिकांश समय अन्य क्षेत्रों से कटा रहता है। यहाँ रहने वाले स्थानीय लोग सरल और मेहनती हैं और यही बात उनके जीवन के सभी पहलुओं में देखी जा सकती है। सर्दियों में अधिकांश लोग थुकपा नामक तरल पदार्थ का सेवन करते हैं, जो शरीर को गर्म रखने में सहायक है।

चाहे यहाँ का खान-पान हो, रहन-सहन का तरीका हो या पहनावा, स्पीति के पाक-कला के व्यंजन इसकी संस्कृति की तरह ही विविधतापूर्ण हैं, जहाँ खेती-बाड़ी से प्राप्त होने वाली छोटी-छोटी चीज़ों से कई तरह के लजीज व्यंजन बनाए जाते हैं। हालाँकि स्पीति घाटी के लोग बौद्ध धर्म का पालन करते हैं, लेकिन यहाँ विविध वनस्पतियों की कमी के कारण अधिकांश मांसाहारी हैं। सर्दियों में बेहतर जीवन और शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिए मांस खाया जाता है। आलू, मटर, जौ, मांस और बटर टी उनका मुख्य आहार है।

स्पीति घाटी की कला और संस्कृति -

स्पीति घाटी में कला मुख्य रूप से पारंपरिक, जैसे कि थंका पेंटिंग, लकड़ी की नक्काशी और भित्ति चित्र कला के माध्यम से व्यक्त की जाती है, जिन्हें अक्सर घाटी के मठों और मंदिरों में प्रदर्शित किया जाता है। थंका पेंटिंग बुद्ध, बौद्ध देवताओं और रूपांकनों के जीवन से परिदृश्यों को दर्शाने वाली जटिल स्क्रॉल न केवल धार्मिक महत्व की वस्तुएं हैं, बल्कि प्रतिभाशाली स्थानीय कलाकारों द्वारा बनाई गई कलात्मक उत्कृष्ट कृतियाँ भी हैं, जो धर्म और धार्मिक स्थलों के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हैं तथा घाटी के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सार को दर्शाती हैं। सर्दियों में स्पीति घाटी के ज्यादातर हिस्सों में जैसे पिन वैली क्षेत्र में बुर्जुगों की देखरेख में नौजवान लोग भी पत्थरों के ऊपर बौद्ध धर्म के मंत्रों को लिखकर अपनी कलाकृति का सुन्दर प्रदर्शन तथा बौद्ध धर्म के प्रति अपने जागरुकता को दिखाते हैं।

स्पीति के सांस्कृतिक ताने-बाने में संगीत और नृत्य भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिंदू त्योहारों की तरह ही स्पीति के किसी भी त्योहार में पारंपरिक लोकगीत और नृत्य रूप होते हैं जो इस क्षेत्र की जीवनशैली और उत्सवों को दर्शाते हैं।

लोसर और लादरचा मेले जैसे स्थानीय त्योहारों के दौरान, स्थानीय लोग ढोल, झांझ और तुरही जैसे पारंपरिक संगीत वाद्ययंत्रों के साथ मुखौटा नृत्य करने के लिए इकट्ठा होते हैं, जिसे छाम नृत्य के रूप में जाना जाता है। स्पीति घाटी में सद्भाव जीवन का एक तरीका है। स्थानीय लोग अपने जीवन के सभी पहलुओं में सद्भाव बनाए रखने की कोशिश करते हैं। चाहे वह उनका जीने का तरीका हो, अपने झुंडों के साथ कैसा व्यवहार हो या उनकी धार्मिक प्रथाएँ, आदि सभी में संतुलन बनाए रखने में उनकी सरल प्रकृति झलकती है। आप देखेंगे कि सभी गाँवों में एक ही तरह की संरचना है, जिसमें लाल रंग की दीवारों के साथ सफ़ेद रंग की खुरदरी दीवारें हैं, यहाँ तक कि उनके मठों में भी सफ़ेद रंग की खुरदरी दीवारें और उनकी सीमाओं के किनारे कई स्तूप हैं, यह एकरूपता शायद ही कहीं और देखने को मिले और यह उनकी गहरी सांस्कृतिक प्रणाली को दर्शाता है।

स्पीति घाटी में त्योहार

लादरचा मेला

जुलाई में लादरचा मेला गर्मियों के स्वागत के लिए मनाया जाता है। स्पीति घाटी का इतिहास इस लादरचा मेले से जुड़ा हुआ है। पुराने दिनों में हिमालय के चारों क्षेत्रों से व्यापारी यहां इकट्ठा होते थे और एक दूसरे के साथ वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे यहां वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार करते थे।

दछांग महोत्सव

यह त्योहार स्पीति घाटी में दिसंबर-जनवरी के सर्दियों के महीनों के दौरान मनाया जाता है। यह त्योहार बहुत उत्साह और खुशी के साथ मनाया जाता है जिसमें सामुदायिक अलाव, लोकगीत और नृत्य शामिल होते हैं। इस दिन गाँव के पुरुष तीरंदाजी का प्रदर्शन करते हैं तथा वहाँ के स्थायी मदिरा छांग का सेवन करते है।

लोसर महोत्सव लोसर त्योहार को लाहौल क्षेत्र में हल्दा के नाम से भी जाना जाता है। यह तिब्बती नव वर्ष का प्रतीक है और फरवरी में मनाया जाता है।

लोसर एक बहुत ही महत्वपूर्ण त्योहार है और इसे लाहौल क्षेत्र में बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। लगभग सभी मठ इस परंपरा में भाग लेते हैं और इस त्योहार के दौरान

पारंपरिक नृत्य देखा जा सकता है। तीन दिनों तक चलने वाले इस समारोह में चाम नृत्य शामिल है, जिसमें नर्तक जटिल पोशाक और मुखौटे पहनते हैं।

छेचु मेला

छेचु मेला जून में कई जगहों पर मनाया जाता है, स्पीति में से कि गोम्पा, ताबो गोम्पा और माने गोम्पा तथा सबसे बड़ा छेचु का मेला रिवालसर में मनाया जाता है जो कि तीन दिन का होता है। यह रिवालसर के निगमा मठ के बौध कमेटी के द्वारा आयोजित किया जाता है। इसमें दो तीन दिन सांस्कृतिक छाम नृत्य किया जाता है जोकि कुंगरी मठ के छोटे भिक्षुओं द्वारा प्रदशित किया जाता है। तीसरे दिन छेचु में आए लोग अपने धर्म मित्र को चुनते हैं।

यह त्योहार कई महीनों की शीत निद्रा और सीमित आवाजाही के बाद ग्रामीणों को पड़ोसी गांवों के साथ पुनः जुड़ने और मेलजोल बढ़ाने के उद्देश्य से मनाया जाता है।

यह मेला सर्दियों के अंत का संकेत देता है और यह सबसे प्रतीक्षित समारोहों में से एक है क्योंकि यह आने वाले समय में बढ़ती समृद्धि का प्रतीक है।

पूर्वमध्यमा, द्वितीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

गेलुग सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि व परिचय

—नीमा छेरिंग—

गेलुग संप्रदाय तिब्बत के प्रसिद्ध महाविद्वान 'जे लामा चोंखापा लोबसांग डगपा' द्वारा चौदहवीं शताब्दी में स्थापित किया गया था। यह बौद्ध धर्म के प्रमुख संप्रदायों में से एक है।

भगवान बुद्ध ने सौ से अधिक ग्रंथों का उपदेश दिया था, और नालंदा के विद्वानों एवं अन्य बौद्ध आचार्यों द्वारा असंख्य ग्रंथों की रचना तथा उपदेश दिए गए। इसी कारण, बाद में विद्वानों में विभिन्न मत उत्पन्न हुए। अतः विविध सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई।

प्राचीनकाल में बौद्ध धर्म में वैभाषिक, सौन्त्रान्तिक आदि चार सिद्धान्त प्रचलित थे। इसी प्रकार, तिब्बत में भी चार संप्रदायों का उदय हुआ: ञिङमा, कर्ग्युद, साक्या और गेलुग। इन चारों में गेलुग संप्रदाय सबसे अंत में अस्तित्व में आया। हालांकि, सभी संप्रदायों का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना ही है।

गेलुग संप्रदाय की स्थापना

गेलुग संप्रदाय के संस्थापक जे लामा चोंखापा लोबसांग डगपा का जन्म सन् 1357 में चोंखापा नामक गाँव में हुआ था, जिससे उन्हें यह नाम मिला। वे मात्र तीन वर्ष की आयु में ही भिक्षु बन गए थे और उन्होंने बौद्ध धर्म के अनेक शास्त्रों एवं ग्रंथों का अध्ययन किया, जैसे: मध्यमक ग्रंथ, अभिसमयालंकार, अभिधर्मकोश, प्रमाणवार्तिक आदि।

उन्होंने सूत्र और तंत्र दोनों का विशेष अध्ययन किया, विशेष रूप से प्रमाणवार्तिक और मध्यमक पर उनकी गहरी पकड़ थी। उन्होंने गेलुग संप्रदाय की स्थापना की और लामरिम सहित अनेक ग्रंथों की रचना की। उनके अनेक शिष्य थे, जिनमें ग्यलछब जे और खेदुब जे जैसे महान विद्वान शामिल थे।

सन् 1408 में, उन्होंने गदेन मठ (गोनपा) की स्थापना की, जिससे इस संप्रदाय का नाम गेलुग पड़ा। यह इस संप्रदाय का पहला मठ था। सन् 1409 में, उन्होंने 15 दिन की विशेष पूजा प्रारंभ की, जिसे "मोनलम छेनमो" (महान प्रार्थना उत्सव) के नाम से जाना जाता है। यह परंपरा आज भी चली आ रही है।

धीरे-धीरे गेलुग संप्रदाय पूरे तिब्बत में फैलने लगा और इस संप्रदाय से कई महान विद्वान हुए। इस संप्रदाय के कई महत्वपूर्ण मठ स्थापित किए गए, जैसे: सेरा मठ, डेपुंग मठ, ताशी लुन्पो मठ, ज़ूमे मठ आज ये सभी मठ भारत के दक्षिण भाग में स्थित हैं। इन मठों में

अनेक भिक्षु रहते हैं, जो बौद्ध धर्म के विभिन्न ग्रंथों का अध्ययन एवं शास्त्रार्थ करते हैं। लगभग 20 साल से भी अधिक अध्ययन करना होता है, और इसके बाद 6 साल की परीक्षा देनी होती है, जिसे गेलुग परीक्षा कहा जाता है। यह सबसे बड़ी परीक्षा होती है, जिसमें कई मठों के भिक्षु भाग लेते हैं। अंत में इनमें से एक व्यक्ति गेलुग संप्रदाय के सबसे बड़े गुरु बनते हैं, जिन्हें गदेन ठिपा कहा जाता है, और वे पूरे विश्व में प्रसिद्ध होते हैं।

सबसे पहले यह पद गेलुग संप्रदाय के संस्थापक जे लामा चोंखापा लोबसांग डगपा ने संभाला था, और अब तक यह पद 105वें गदेन ठिपा तक पहुँच चुका है। वर्तमान में इस पद को सम्मानित लोबसांग दोर्जे रिनपोछे जी संभाल रहे हैं। इसी प्रकार गेलुग संप्रदाय की स्थापना हुई थी और यह संप्रदाय धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैल रहा है। सन् 1419 में लामा चोंखापा का महापरिनिर्वाण हो गया था।

शास्त्री, द्वितीय वर्ष
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

महायान से तात्पर्य

—विक्रम जीत नेगी—

आर्य गण्डव्यूह सूत्र में बोधिसत्त्व अजित कहते हैं - *''बोधिचित्तं हि कुलपुत्र बीजभूतं सर्वबुद्धधर्माणाम्''* अर्थात् हे कुलपुत्रों। सर्वबुद्धधर्म का बीज बोधिचित्त है। बोधिचित्त से सर्वपापों का प्रक्षालन होता है, दरिद्रता दूर होती है तथा सभी संकल्प फलीभूत होते हैं। महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा का मूल यही बोधिचित्त है।

हीनयान और महायान शब्दों का प्रयोग सर्वप्रथम महायान सूत्रों में हुआ है। इन शब्दों की शास्त्रीय और तुलनात्मक व्याख्या हमें *अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र, लङ्कावतारसूत्र* आदि के अतिरिक्त आचार्य नागार्जुन, असंग, आदि के ग्रन्थों में देखने को मिलती है। इनके अनुसार महायान से तात्पर्य प्रशस्त, गम्भीर, बृहद उत्तम, उच्चतम और वास्तविक आध्यात्मिक मार्ग से है। हीनयान का अर्थ तुच्छ, लघु, संकुचित, निम्नतर तथा प्रारम्भिक धार्मिक पथ से है। यदि हीनयान दूध के समान है, तो महायान उस दूध का नवनीत है। पहला यान साधारण योग्यता के लोगों के लिए अनुसरणीय है किन्तु दूसरा विकसित बुद्धि और गम्भीर चिन्तनशक्ति युक्त प्राणियों के लिए है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस प्रकार का आशय रखने वाले इन शब्दों के जन्मदाता महायानी हैं न कि हीनयानी।

इन्हीं विशेषताओं के कारण इस मत के अनुयायी अपने को महायानी अर्थात् प्रशस्तमार्ग वाला कहते हैं। महायान धर्म के विकास को समझने के लिए विविध बौद्ध संगीतियों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

महायान दो शब्दों से निर्मित है- महायान महान्+यान महा का अर्थ है बड़ा तथा यान का अर्थ है मार्ग। इस मार्ग के अनुयायियों का कहना है कि जीव को चरम लक्ष्य तक पहुंचाने में यही मार्ग सबसे अधिक सहायक है। स्थविरवाद अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुंचाता। इसलिए उसे हीनयान' की संज्ञा दी गई है। श्रावकयान को अर्हतयान भी कहते हैं। इस मार्ग के पथिक अर्हत् पद के लिए चेष्टा करते है। श्रावकयान तथा प्रत्येक बुद्धयान का लक्ष्य बोधि अथवा निर्वाण प्राप्त करना है। श्रावकगण सद्धर्म की शिक्षा बुद्ध से अथवा बुद्ध के शिष्यों से प्राप्त करते हैं। बिना बुद्ध एवं गुरु ज्ञान के बिना स्वयं से धर्म की यथार्थता को नहीं जान पाते। वे सद्धर्म का प्रचार करके दूसरों को उसमें दीक्षित करते हैं, परन्तु प्रत्येक बुद्ध ऐसा नहीं करते, वे न शिष्य होते हैं, न आचार्य। वे स्वयं प्रयत्नों से स्वयं के लिए निर्वाण प्राप्त करते हैं।

बोधिसत्त्वयान वस्तुतः महायान है, इसे बुद्धयान, एकयान या पारमितायान आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इस मार्ग के पथिक अनुयायी बोधिसत्त्वचर्या का अनुसरण करते हैं। उनका ध्येय प्राणियों के कल्याण के लिये असंख्य जन्मान्तरों तक पारमिताओं के अभ्यास द्वारा बुद्धभूमि को प्राप्त करना है, केवल अपने उत्थान हेतु नहीं अपितु परार्थ के लिए भी। अब प्रश्न उठता है बोधिसत्त्व कौन है ? जो प्राणियों के सुख और हित के लिए बुद्ध होने की प्रतिज्ञा कर और उस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिये सतत् प्रयत्नशील है, वह बोधिसत्त्व है। बोधि अथवा निर्वाण का अभिप्राय निश्चित करने वाले इन सत्वों को *बोधिचित्तोत्पाद* करना पड़ता है और बोधिसत्त्वचर्या का अनुपालन करना होता है। प्रज्ञा और करुणा बोधिचित्त के दो आवश्यक अंग है।

सभी प्राणियों में तथागतगर्भ रूपी बीज विद्यमान है, सभी जीव सम्यक् सम्बुद्ध हो सकते हैं। अत एव सभी प्राणियों को निर्वाण दिलाने में समर्थ मार्ग महायान अथवा बोधिसत्त्वयान है, वस्तुतः महान और श्रेष्ठ यान है, एक मात्र यान है, दूसरा कोई यान नहीं है।

"एकं हि यानं द्वितीयं न विद्यते।"

इस संसार में केवल एक ही यान है, दूसरा या तीसरा कोई यान नहीं है। यानों की अनेकता दिखलाना तो मेरा उपाय कौशल्य है- बुद्ध द्वारा कथित है। भगवान बुद्ध ज्ञानोपदेश के लिए ही इस संसार में जन्म लेते हैं, उनका एक ही कार्य है दूसरा नहीं।

वे विभिन्न प्रकार के तत्वों पर धर्मोपदेश देने तथा मानसिक विकास के लिये लोक में उत्पन्न होते हैं।

भगवान बुद्ध ने करोड़ों प्राणियों के आशय एवं विभिन्न प्रवृत्तियों को जानकर विविध निरुक्तियों एवं हेतुओं के द्वारा सूत्र, गाथा, इतिवृत्तक, अद्भुत धर्म, जातककथाओं, सैकड़ों निदानों एवं गेय्यों का उपमाओं द्वारा उपदेश दिया है। हीन तथा बुद्धत्व का पालन न सकने वाले तथा खनयुक्तों को भी भगवान ने निर्वाण का मार्ग दिखलाया है। वे अनेक कोटि बुद्धपुत्रों को *वैपुल्यसूत्र* का उपदेश देते हैं। केवल एक यान है, तीन नहीं। यदि भगवान ने केवल हीनयान का उपदेश दिया होता तो वह मात्सर्य तथा छन्दराग से युक्त रहा होता। यदि उन्होंने सीधे रूप में प्रत्येक प्राणी से बोधि प्राप्ति के लिए कहा होता तो बहुत से लोगों ने उनकी शिक्षा को गम्भीरता से नहीं लिया होता। वह ऐसा है- इस प्रकार के संसार रूपी जंगल में भटकेंगे तथा बुद्ध द्वारा प्रचलित बासठ मिथ्यादृष्टियों में उलझकर वे असत् पक्ष को धारण करेंगे। भगवान ने छह पारमिताओं के ज्ञान से युक्त प्राणियों को बुद्धत्व में पारंगत बनाया तथा जिन्होंने

निर्वाण प्राप्त धातु-अवशेष की पूजा करने वाले स्तूपों का निर्माण कराने वाले धातु, मिट्टी के ईटों से बुद्ध के प्रतिबिम्बों का निर्माण कराने वाले तथा दीवारों पर भित्ति चित्र बनाने वालों को भी बुद्धत्व का लाभी बताया है। जिन्होंने संगीतमय वाद्ययन्त्रों से गाना गाकर सुगत को मूर्तियों पर फूल चढ़ाकर पूजा की है; स्तूपों के निकट जाकर चंचल चित्त से नमो नमोऽस्तु बुद्धाय ऐसा एक बार भी कहा है, वे सभी ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी बने हैं। हमें प्रायः ऐसे लोग भी देखने को मिलते हैं जो कहते हैं, बुद्ध ने कहा था मेरी पूजा मत करना, मेरे द्वारा दिखाये हुए मार्ग पर चलना यही तुम्हारा मार्गदर्शक होगा, आगे चलकर धर्म ही एकमात्र विकल्प है।

दीघनिकाय के *महापरिनिब्बान-सुत्त* में भी कहा गया है -

अत्तदीपो विहरति अत्तसरणो
अनञ्ञसरणो, धम्मदीपो
धम्मसरणो अनञ्ञसरणो। (दी.नि. 16)

अपने आप को एक द्वीप के रूप में, अपने आप को एक आश्रय के रूप में बनाए रखें। धम्म को एक द्वीप के रूप में, धम्म को एक आश्रय के रूप में रखकर बने रहें। किसी बाहरी शरण की तलाश न करें।

यहां मेरा ऐसा मानना है कि जिस प्रकार महायानी द्वारा हीनयानी एवं महायानी शब्दों का प्रयोग मिलता है ठीक उसी प्रकार द्वितीय संगीति के समय बौद्ध संघ दो मतों में विभक्त हो गया था। जो भिक्षु संघ के नियमों को नहीं मानते थे, वे महासंघिक कहलाए और जो भिक्षु बौद्ध संघ के नियमों का कड़ाई से पालन करते थे, वे थेरवादी (स्थविरवादी) कहलाए। स्थविरवाद को थेरवाद या हीनयान भी कहते हैं, मेरा ऐसा मानना है कि आपसी मतभेदों के कारण चैत्यवादी की परम्परा के आते-आते थेरवादी द्वारा धर्म के नियमों को गम्भीरता से पालन न करते हुए देखने पर उन्होंने ऐसे वाक्यों को प्रचलित किया हो कि धर्म ही तुम्हारा मार्गदर्शक है अन्य नहीं, क्योंकि महायानी ग्रन्थों में वाद्ययन्त्रों से गाना गाकर सुगत की मूर्तियों पर फूल चढ़ाकर जिसने पूजा की है। स्तूपों के निकट जाकर चंचल चित्त से नमोऽस्तु बुद्धाय ऐसा एक बार भी कहा है, वे सभी ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी बने हैं। मेरा ऐसा मानना है कि दोनों संप्रदाय धर्म के स्वरूप को जिस प्रकार जान पायें वे अपने पक्षों को अपनी क्षमता के अनुसार रख रहे होंगे। प्राणियों को धर्म में आरूढ़ करने हेतु जातक जैसी कथाओं के माध्यम से मनुष्य के भीतर धर्म के प्रति श्रद्धा एवं बुद्ध के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर उनके द्वारा प्रदर्शित धर्म को जानकर सर्वज्ञ पद प्राप्त करने के लिए धर्म का उपदेश किया है। विशेषकर विकसित

बुद्धि वाले क्लेश बंधनों से निर्मुक्त होने की चेष्टा न करें। महायानी का एक मात्र उद्देश्य बुद्धत्व प्राप्त करना है, असंख्य प्राणियों के कल्याण हेतु।

इस दृष्टान्त में जन्मान्ध व्यक्ति एक सांसारिक प्राणी है और वैद्य तथागत है जिनके लिये औषधियाँ शून्यता, अनिमित्तता अप्रणिहितता तथा निर्वाण हैं। अन्धा आदमी जैसे दृष्टि प्राप्त करता है ,वैसे ही श्रावकयानी एवं प्रत्येक बुद्धयानिक हैं, जो क्लेश बंधनों को काटकर निर्मुक्त हो जाते हैं। निर्वाण तो केवल विश्राम है, निवृत्ति का साधन नहीं । तथागत बुद्ध उपायकुशल हैं, उनके वचनों से प्रत्यक्षीकरण कर सकते हैं। सभी प्राणी मात्र संसार में दुःख को इसीलिए भोगते हैं कि जिन नित्य आत्मा एवं शाश्वत सत्ता एवं उच्छेदवाद जैसी विचारधाराओं निराकरण करने हेतु उन्होंने निर्वाण रूपी धर्म को प्रदर्शित किया और अन्ततः निर्वाण भी त्याज्य है। यह तो केवल विश्राम है, निवृत्ति का साधन नहीं कहकर श्रावकयानी एवं प्रत्येक बुद्ध , महायान धर्म का मार्गदर्शन करते हैं ।

तथैव श्रावकाः सर्वे प्राप्तनिर्वाणसंज्ञिनः ।
जिनो व देशयेत्तस्मै विश्रामोऽयं न निवृत्तिः ॥

यह बुद्धों का उपायकौशल्य है जो इस नीति से उपदेश देते हैं और कहते हैं कि सर्वज्ञता के बिना सच्चा निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता- सर्वज्ञत्वमृते नास्ति निर्वाणम्।"

बोधिसत्त्वयान तथा अग्रयान भी कहा गया है। बोधिसत्त्व का शाब्दिक अर्थ है- बोधि या ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को प्राप्ति के विशिष्ट साधना आवश्यकता होती है । बोधिसत्त्व के हृदय में महाकरुणा का उदय करना होता है। जिसके कारण वह न केवल अपने लिए बल्कि अन्य सभी का प्राणियों के दुःखों को दूर करने में व्यग्र रहता हो।

पूर्वजन्म में श्रेष्ठ कर्म करने से बोधिसत्त्व के हृदय में पहले सम्बोधि प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है। बोधिचित्त का उत्पाद इसी का नाम है। इस प्रकार बोधिसत्त्व साधारण मनुष्य को कोटि से निकलकर तथागत के गोत्र में प्रवेश करता है । बुद्ध और बोधिसत्वों के गौरवपूर्ण कार्य का स्मरण कर उसका हृदय आनन्दित हो जाता है। उसके हृदय में महाकरुणा का उदय होता है। इस प्रकार बुद्धत्व पद की प्राप्ति बोधिसत्त्व का परम आदर्श है। बोधिसत्त्व अपना निर्वाण तब तक नहीं चाहता, जब तक कि वह अन्य प्राणियों को दुःखों से मुक्त नहीं करा देता। बोधिसत्त्व का मार्ग अर्हत् के मार्ग से अधिक उदार है। बोधिचित्त के विकास के पश्चात् बोधिसत्त्व को 6 पारमिताओं का अभ्यास करना अनिवार्य होता है । पारमिता का अर्थ है पूर्णत्व अनेक सद्गुणों के अभ्यास से बोधिसत्त्व बुद्ध बनने के अभ्यास को

पूर्ण करता है। महायान की एक विशेषता दशभूमि की कल्पना है। जिससे साधक अपने ध्यान के माध्यम से उन उच्चतम स्तर के भूमि गुणों का ध्यान के माध्यम से अपने भीतर अनुभव करता है। मैं यहां पर मोटे तौर पर जानकारी दे रहा हूँ। प्रथम भूमि से दश भूमि की विशेषताओं का व्याख्यान प्रायः महायानी शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है ।

हीनयान के अनुसार अर्हत पद की प्राप्ति तक चार भूमियाँ हैं, जिनका नाम है- स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत।

महायान के अनुसार बुद्धत्व या निर्वाण की प्राप्ति के लिए दशभूमियाँ मानी जाती हैं। ये भूमियाँ सोपान की तरह एक भूमि पार करने पर बोधिसत्त्व दूसरी भूमि में प्रवेश करता है और धीरे-धोरे आध्यात्मिक विकास को प्राप्त कर बुद्धत्व पद पर आरूढ होता है। मुदिता से लेकर धर्ममेघा तक ये दशभूमियाँ हैं।

तथागत बुद्ध उपायकुशल होने के लक्षण वाला है कि नहीं ? इस पर नीचे लाइनों में चर्चा करूंगा कि बुद्ध को उपायकौशल्य क्यों कहा गया है। बुद्ध द्वारा शारिपुत्र ऐसा कहे जाने पर कि हे शारिपुत्र, यह मेरा उपायकौशल्य ही है। सर्वत्र बंधन से युक्त प्राणियों को तीन यानों के द्वारा उपदेश देकर उन्हें संसार के भवचक्र से मुक्त करने हेतु विनयजनों के चित्त प्रवृत्ति के अनुसार धर्म प्रदर्शित कर अगर साधक अधम, मध्य और उत्तम पुरुष है, तो उसे उसी के अनुसार एवं उनकी योग्यता के अनुसार मैं तीन यानों के द्वारा देशना करता हूं जिससे वे अपने चित्त प्रवृत्ति के अनुसार फल को प्राप्त कर सकें।

एकं हि यानं द्वितीयं न विद्यते ।
तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके
अन्यत्रुपाया पुरषोत्तमानां
यद्याननानात्वुपदर्शयन्ति ।। (सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र)

भगवान तथागत बुद्ध का कहना है कि इस संसार में केवल एक ही यान है दूसरे या तीसरे यान का सर्वथा अभाव है। यानों की अनेकता दिखलाना तो उपायकौशल्य मात्र है। इससे स्पष्ट होता है कि तथागत बुद्ध उपायकौशल्य है, प्रत्येक प्राणियों की क्षमता के अनुसार धर्म प्रदर्शित कर धर्म में आरूढ़ करते हैं। यही तथागत बुद्ध की सर्वोच्च उपलब्धि है उनके समकालीन दार्शनिक और उनके बाद के दार्शनिक में वे वास्तव में मनुष्य ही नहीं अपितु दैविक सभी चित्त प्रवृत्ति जानकर धर्म की देशना करते थे जिससे वह अपने ही द्वारा उत्पन्न किए दुःख का निराकरण कर अपनी चित्तप्रवृत्ति के अनुसार फल को प्राप्त कर सकें। आप सभी से अनुरोध है कि बुद्ध के धर्म को जानने की चेष्टा जरूर करें।

बुद्ध हमारे पूर्वज थे। उनके द्वारा प्रदर्शित धर्म पूरे विश्व का कल्याण कर रहा है केवल हिमालयी क्षेत्रों में इसलिए फल-फूल रहा और बुद्ध धर्म से इसलिए जुड़े हैं क्योंकि कर्मकाण्ड से सम्बंधित जितनी विधि उससे उनका लाभ उन्हें हो रहा है। मैं इसका विरोध नहीं कर मेरे कहने का तात्पर्य यह कि उनके द्वारा प्रदर्शित धर्म करुणा, मैत्री, की भावना करें। कल्याणकारी करुणा रूपी चित्त अपने भीतर धारण करे और विकसित करे। लोककल्याण ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राणियों कल्याण कार्य में लगे रहे जिससे सभी प्राणी सुख का अनुभव कर सकें। मैं वास्तव में लिखना नहीं चाहता था किन्तु मुझे बहुत दुःख होता है कि पूरे भारतवर्ष के लोग अपने इतिहास को नहीं जान पा रहे हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह भी नहीं कि मैं इतिहास का खगोलीय शास्त्री हूं किन्तु किताबों के अध्ययन करने के माध्यम से इतना तो ज्ञान तो हो गया है कि भारतीय संस्कृति पूर्व में भारत में फल फूल रहीं थीं क्यों विदेशी लोग भारतीय संस्कृति से इतने प्रभावित थे और वे अपने भारतीय भूमि को बुद्ध भूमि के रूप में किताबें लिखते थे।

किस कारण से लोग भारत की भूमि को ज्ञान की भूमि रूप में पूजित करते थे और क्यों? और भारत विश्वगुरु किन परिस्थितियों के कारण बना था, इसे भी हमें जानने का प्रयास करना होगा। भारत को बुद्ध की भूमि के रूप में पूजित किया जाना शिल्पकला बौद्धों की देन है, क्योंकि भगवान बुद्ध की शिक्षा का प्रचार-प्रसार शिल्पों द्वारा हजारों वर्षो से भारत में चली आ रही बौद्ध विरासत है।

बौद्धिक संस्कृति में भगवान बुद्ध द्वारा बताए मार्ग का आदर होता था, लोग उस मार्ग पर चलते थे या चलने का प्रयास करते थे। इसीलिए भगवान बुद्ध के मार्ग के प्रतीक अनेक पद्मचिन्ह सम्राट कनिष्क के काल बनाए गए। इस पदकचिन्ह में जो त्रिशूल जैसा चिन्ह वह त्रि-रत्न का प्रतीक था, अब वास्तव में किस रूप में पूजित किया जा रहा। इसलिए आप सभी से निवेदन है कि बुद्ध धर्म के ग्रन्थों को जरूर पढ़ें। इसके बारे में मेरा मानना है कि जैसे-जैसे बुद्ध धर्म से ज्ञान अर्जित करोगे, स्वतः ही भारत का गौरवशाली इतिहास जान सकोगे। क्यों सम्राट अशोक अन्य राजाओं से अत्यधिक प्रभावशाली थे अपने शासनकाल में। लिखने को बहुत सी बातें है मोटे-मोटे अक्षरों में यही कहूंगा कि बुद्ध धर्म में बहुत सी गुणवत्ता है।

आपका मार्ग प्रदर्शित करने वाले मार्गदर्शक तथागत बुद्ध के प्रति श्रद्धा अनायास ही उत्पन्न होगी। पुनः आप सभी से 21वीं सदी के इस युग में सभी विषय का अध्ययन कर रहे या कर चुके हैं तो धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन कीजिए पक्षपाती हुए बिना। मैं समझता हूं कि आप वास्तव में मनुष्य लोक में ही स्वर्ग का सृजन कर सकते हैं करुणा और मैत्री के बल पर। आप किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हैं तो कमजोर वर्गों का शोषण नहीं करेंगे तो वह वर्ग

विकसित होकर समाज में अपना योगदान देने में समर्थ हो सकेगा और रूढ़िगत विचारधाराओं, समाज में फैली कुरीतियों को बढ़ावा देने वालों का विरोध करें स्वयं को उनके स्थान पर रख देखें। जिस प्रकार आप दुःख नहीं चाहते वैसे ही कोई दूसरा मनुष्य भी दुःख नहीं चाहता। सुख की अपेक्षा दोनों करते हैं, इसलिए निःस्वार्थ भाव से समाज की सेवा करें। सम्पूर्ण जीवन समाज के लिए समर्पित करें, समाज के लिए जो हितकारी कार्य है उसे करें, अपने भीतर कृतार्थता की भावना विकसित कर सभी प्राणियों के ऋण से मुक्त होने के लिए उन सभी प्राणियों की सेवा करें। मैं समझता हूं हमारे भीतर दूसरे व्यक्ति के लिए जो राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या, भावना है, वह स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। यह सभी मन से उत्पन्न होते हैं इसलिए अपने चित्त को कुशलतापूर्वक कुशल कर्म करने के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए एवं सदैव अपने भीतर करुणा, मैत्री, प्रज्ञा को प्रसारित करते रहना चाहिए। इस चित्त में क्लिष्ट भावनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। असंख्य जन्मों से राग, द्वेष, मोह, रूपी बीज को ही पोषित करते आ रहे हैं। जिसे बिना प्रयोजन ही हम सदैव अकल्याणकारी कार्य में रत रहते यह हमारे संस्कारों का फल नहीं तो और क्या है? हमें तथागत बुद्ध की जीवनशैली से सीख लेकर उनमें विद्यमान उच्चतम गुणों को अपने भीतर धारण करने हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए, जिससे हमारे भीतर असीम करुणा की धारा चित्त में प्रवाहित हो। दर्शन मात्र तक अपने विचारों को सीमित न हो, समाजिक प्राणियों का क्या कर्तव्य है उस पर विशेष टिप्पणियां देखने को मिलती हैं पालि पाठ्यक्रम में। चित्त सदैव करुणा से ओतप्रोत होना चाहिए, जब भी किसी मनुष्य को एवं दुःखी प्राणियों को देखें। किस प्रकार से उसके दुःख का निवारण कर सकता हूँ तभी मैं समझता हूं कि वास्तव में बुद्ध के अनुयायी एवं महायानी साधकों की गणना में आपको रख सकते हैं। मेरा ऐसा मानना है कि अगर आप धनवान हैं तो पिछड़े वर्ग के लोगों का अपने धन से उनकी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए प्रयासरत रहिए।

ऐसा प्रयास करें कि धनवान नहीं होने पर भी आपके काय, वाक्, चित्त से संयमित आचरण से किसी को ठेस न पहुँचे। सदैव अपने चित्त-वृत्ति का विश्लेषण करते रहें। अपने अकुशल विचारों को वाक् एवं काय द्वारा चर्या में न लाएं। कब आपके द्वारा कहे गये आपके कटु वचन दूसरे के सुखी जीवन को क्षीण कर दें। सबसे उत्तम तो अकुशल चित्त को उत्पन्न ही नहीं होने देना है। अपने भीतर अगर चित्त को संयमित नहीं कर पा रहे हो तो भी वाणी और शरीर द्वारा अहितकारी कार्य न करें। उस पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए और पारमिताओं का पालन सत्वों की सेवा के बिना सम्भव ही नहीं है। इसलिए महायानी साधक

स्वयं को बुद्धत्व प्राप्त करने हेतु वह सभी प्राणियों का ऋणी मानता है कि उन्हीं के फल स्वरूप वह बुद्धत्व जैसा पद प्राप्त कर पायेगा। बिना सत्वों की अनुकम्पा से बुद्धत्व जैसे शब्द को सुन पाना स्वप्न मात्र है। इसलिए मैं भी सदैव अपने भीतर महायानी साधकों के समान जिस प्रकार उन्होंने चर्या का पालन किया था, उसी के अनुरूप में भी उच्चतम गुण को अपने भीतर उत्पन्न कर सकूं। हम जैसे भ्रमित लोगों ने धर्म प्रदर्शित किया हमारे भीतर भी उनके समान गुण उत्पन्न हो और उसी प्रकार चर्या करने की चेष्टा करता हूं और प्रत्येक प्राणी को करना चाहिए, जिससे वह परिवार, ग्राम, प्रदेश एवं राष्ट्र में अपना योगदान दे सके। आप सभी किन्नौर, लाहौल-स्पीति सीमावर्ती क्षेत्रों के लोगों से अनुरोध है कि भौतिक सुख-सुविधा के पूर्ति के लिए है नहीं अपितु अपने चित्त को उच्चतम मार्ग पर आरूढ़ करने हेतु धर्म का अध्ययन करें। अच्छे विचारों को किसी भी सम्प्रदाय में क्यों न हो अगर उससे आपके जीवनशैली में परिवर्तन आ रहा है तो जरूर अपनाएं, परकल्याण की भावना विकसित करें। जिससे आप महायानी साधकों के समान गुण विकसित कर सकें। तथागत बुद्ध ने धर्म रूपी द्वीप देकर असंख्य प्राणियों कल्याण किया, उसी प्रकार आपके जीवनशैली अच्छे गुणों से प्रभावित होकर असंख्य दुःखी प्राणियों के दुःख का निराकरण कर सकें। इसी प्रकार प्रयास करते रहना अपने दैनिक जीवन में।

महायानी साधक भी अपने भीतर अच्छे गुणों को विकसित करते हुए महायानी साधक कहलाता है। इसलिए आप और हम सबको भी अपने भीतर अच्छे गुणों को विकसित कर महायानी साधक के अनुसार बनने की चेष्टा करते रहना चाहिए।

अंत में तथागत बुद्ध एवं बोधिसत्त्व से प्रार्थना करूंगा कि हम सभी मानव-जाति को धर्म का सार ज्ञात हो और आपके प्रदर्शित धर्म के अनुसार चर्या कर स्वयं द्वारा उत्पादित दुःख का निराकरण बुद्ध मार्ग द्वारा हो। सभी देहधारियों, स्वयं द्वारा उत्पादित दुःख का निराकरण करने की क्षमता स्वयं विकसित कर सकें। जिस प्रकार असंख्य बुद्ध एवं बोधिसत्त्व ने असंख्य कल्पों तक पारमिताओं का पालन कर असंख्य दुःखी प्राणियों के दुःखों को दूर करने हेतु जिस उच्चतम धर्म को धारण कर बुद्धत्व पद प्राप्त किया या भविष्य में जितने भी बुद्ध करेंगे उस ज्ञान को जानने की चेष्टा हमारे भीतर उत्पन्न हो, यही मेरी मनोकामना है।

भवतु सर्वमङ्गलम्।

शास्त्री (तृतीय वर्ष)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

कविता

—राजेश कुमार मिश्र—

पहाड़ों में लालच के पहाड़

पहाड़ों में लालच के पहाड़
आमने सामने पहाड़ों में दो पहाड़
मानवी अभीप्सा की किंचल सी शक्ति पा
फूलते फैलते चिढ़ाते से बढ़ते, लालच के ये पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़।

देवभूमि में सक्रिय देवों के देवत्व को, ऋषियों के तप को
भक्तो की भक्ति और साधकों की साधना को
आदिकाल से प्रवाहित आस्था की ऊर्जा को
नितांत जड़ और स्वार्थ पूर्ति हेतु मान
नित नए कुचक्र रच ठगते, छलते
लोलुप जन के समष्टि मन की वासना के ये पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़।

जंगलों को नोच लूट खनिजों को खोदकर
पहाड़ों को छेद-भेद नदियों को मोड़कर
प्रकृति से सब नाते तोड़, पिछड़ों को पीछे छोड़
लोभियों के लालच के बनते बढ़ते पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़

कोयल की कूक और मैना के स्वर को
पवन और पानी के उन्मुक्त गान को
वृक्षों की सरगम और घाटी के निनाद को
प्रकृति से समरस मनुज सन्तानों को
मूर्ख वाहियात मान, पतन पराकाष्ठा की अट्ठाहास के पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़

धर्म संस्कृति ऊर्जा ओजस और जीवन रस के कारक
धारक प्रच्छन्न परमेश्वर हिमालय देवभूमि को

केवल भोग्य भूमि मान
अपने ही जीवन से खेलते, रक्तबीज से बढ़ते
तृष्णा के मानस पुत्र लालच के ये पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़

धन को ही साधन और धन ही को साध्य मान
धन ही में शक्ति जान, देह को अमर मान
परवशता पशुता को ही जीवन का उत्स मान
लोभियों के लालच के उगते बढ़ते पहाड़
पहाड़ों में लालच के पहाड़

ओ पहाड़

ओ पहाड़
तुम क्यों मेरे अन्दर उगते हो
ओ पहाड़
धरती पर तुम अब
क्यों बसते हो
तेरे साथी
पेड़, झाड़ियों, नदी, पखेरु
सब तो हमने छीन लिए हैं
फिर भी तुम हँसते हो
ओ पहाड़
तुम क्यों इतना हँसते हो
मत बरसाओ यह पत्थर
तुम इनको भी खोओगे
अपने नीचे लगी हाट में
बिन पैसे पत्थर भी पाने को तरसोगे
ओ पहाड़
अब तुम भी पानी को तरसोगे
देखो मेरी सड़कें, नहरे
भवन, महल और बाँध

सब में तुम हो
लेकिन अब तुम
इन सबको तरसोगे
औ पहाड़
तुम क्यों इतना हँसते हो
ओ पहाड़
तुम क्यों मेरे अन्दर उगते हो

गाँव पाओगे कहाँ

साथ मेरे चल रही थी
जिन्दगी की छाँव
पर हुआ धुंधला रेशमी सा गाँव
वक्त के काले कफन से ढक गया
जागता था, आज लेकिन सो गया
और कितने दिन रहेगा यह अँधेरा
कौन लाएगा यहाँ फिर से सवेरा
गाँव जिससे शहर की रंगीनियों थीं
शहर जिसमें गाँव का ही था लहू
मुड़ गया किस ओर
जाने खो गया किस भीड़ में
है अँधेरा आज अब हर ओर जाओगे कहाँ
इस शहर की भीड़ में तुम गाँव पाओगे कहाँ

प्रलेखन अधिकारी
शांतरक्षित ग्रंथालय
के.उ.ति.शि.सं. सारनाथ, वाराणसी

ऐसी है अपनी हिन्दी

—ओम धीरज—

कोटि-कोटि कंठों से गूँजे
ऐसी है अपनी हिन्दी,
भारत माँ के स्वर्ण-भाल पर
चमके है ऐसी बिन्दी !

जहाँ कबीरदास ने पाया
निर्गुण शबद रमैनी में,
वहीं सूर-तुलसी ने देखा
सगुन-रूप मृदु बैनी में;
भूल गये सब लोक-दुखों को
ऐसे थे स्वर आनन्दी !

रीतिकाल में प्रेम-प्रणय को
देखा कृष्ण-राधिका में,
भूषण ने तब भी देखा था
सुन्दर राष्ट्र-साधिका में;
समय-काल के कालीदह से
मुक्त हुई तब कालिन्दी !

भारतेन्दु ने पड़ी-खड़ी की
महावीर ने रूप गढ़ा,
जयशंकर, मैथिली गुप्त ने
दिनकर के संग स्वर्ण मढ़ा-,
तब से चढ़ती गयी शीर्ष पर
नहीं हुई थोड़ी मन्दी !
ऐसी है अपनी हिन्दी !

अभिज्ञान शाकुन्तलम, सा 14/96-55
सारंगनाथ कालोनी, सारनाथ,
वाराणसी-221007
मो.नं.-9415270194

कविता

—रामायण धर द्विवेदी—

अँधियारे में तीर चलाना,
कठिन लगन से आँख चुराना,
और एक के तीन बनाना छोड़िए !
अगर मगर कर समय बिताना, छोड़िए !!

आप अक्ल की रोटी खाएं,
निश्चय सदा अटल हो।
नीर - क्षीर के बनें विवेकी,
रोम-रोम निश्छल हो ॥

काँटा बोना, टाँग खींचना,
नीच कर्म ये सारे।
अंधे की लाठी हो पाएं,
तब फिर जन्म सफल हो ॥

बहुत ग़लत है कोख लजाना,
शुरू करें जी जान लड़ाना,
अब बालू पर भीत बनाना, छोड़िए !
अगर मगर कर समय बिताना, छोड़िए !

अपनी करनी पार उतारे,
सत्य कहा जाता है।
कर्म करे जो जैसा, वो
वैसा ही फल पाता है।
अधजल गगरी रहे छलकती,
ये हर कोई जाने।
जो गरजे, वो नहीं बरसता,
केवल दिखलाता है ॥

मिट्टी के माधो बन बैठे,
खटिया तोड़ें, मूंछें ऐंठे,
बिना गुणों के धाक जमाना छोड़िए!
अगर मगर कर समय बिताना, छोड़िए!!

चोरी कर के, कोतवाल को
उल्टा डाँट लगाते ।
फिसल पड़े तो हर-हर गंगा,
कहकर शीश झुकाते।
बिना मरे ही स्वर्ग चाहते,
किन्तु नहीं यह सम्भव !
जो सागर में गहरे उतरे,
वो ही मोती पाते ॥

सदा कुएँ तक प्यासा जाए,
कुआँ भला कब चलकर आए ,
हस्तरेखा के दोष बताना, छोड़िए!
अगर मगर कर समय बिताना, छोड़िए!

ग्राम सलेमपुर पाण्डेय
पोस्ट -गोपीनाथपुर
जनपद-बस्ती (उ.प्र.)- 272130
मो.न. : 9838401231

जिन्दगी में सुकून

—अमित कुमार विश्वकर्मा—

सब मिला पर सुकून न मिला जिन्दगी में ।
सब दिया पर सब कुछ छीन लिया जिन्दगी ने ।।

खुशियों के लिए बहुत भगाया बहुत दौड़ाया।
फिर भी अकेला छोड़ दिया जिन्दगी में ।।

रास न आई पल भर भी ख़ुशी।
फिर तनहा छोड़ दिया जिन्दगी में।।

क्या कुसूर था मेरा ।
जो पल भर भी खुश न रह पाए हम ।।

तरसते रहे जिन खुशियों के लिए जिन्दगी में ।
ताश के पत्तों की तरह बिखेर दिया जिन्दगी ने ।।

जो सोचा वो होता कहाँ जिन्दगी में।
एक बार फिर सिखला दिया जिन्दगी ने ।।

कार्यालय सहायक
आतंरिक गुणवत्ता आश्वासन प्रकोष्ठ
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो. नं.-8419020091

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा
आयोजित कार्यक्रम

अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन- दिनांक 14-15 सितम्बर, 2023

माननीय गृह राज्य मंत्री, भारत सरकार की अध्यक्षता में दिनांक 14-15 सितम्बर, 2023 को पूना (महाराष्ट्र) में हिंदी दिवस एवं तीसरे अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें संस्थान से डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव, रा.का.स. एवं श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी ने भाग लिया।

राजभाषा सप्ताह समारोह-2023 का आयोजन (दिनांक 25 सितम्बर, 2023 से दिनांक 30 सितम्बर, 2023 तक)

संस्थान सें सामान्य रूप से राजभाषा सप्ताह समारोह का आयोजन हिंदी दिवस अर्थात् 14 सितम्बर से किया जाता है, परन्तु गृह मंत्रालय के आदेशानुसार **हिंदी दिवस एवं तीसरे अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन** का आयोजन 14 एवं 15 सितम्बर, 2023 को पूना (महाराष्ट्र) में किया गया। तदुपरान्त संस्थान के राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा दिनांक 25 सितम्बर, 2023 से दिनांक 30 सितम्बर, 2023 तक संस्थान में राजभाषा सप्ताह समारोह आयोजित किया गया, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किए गए:-

हिंदीमय वातावरण तैयार करने एवं प्रेरणाप्रद वातावरण बनाने के उद्देश्य से राजभाषा सप्ताह समारोह के शुभारम्भ से दो दिन पूर्व ही प्रमुख विद्वानों एवं राजनेताओं के हिंदी विषयक विचारों की स्टैंडी बनवाकर आकर्षक ढंग से संस्थान के सभी प्रमुख भवनों के प्रवेश द्वार पर प्रदर्शित कर दिया गया तथा राजभाषा सप्ताह का बैनर भी लगवाए गए।

राजभाषा सप्ताह समारोह का उद्घाटन एवं संगोष्ठी- दिनांक: 25.09.2023 (अपराह्न)

सर्वप्रथम माननीय कुलपति, कुलसचिव एवं अतिथि वक्ताओं द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मुख्य अतिथि एवं वक्ताओं को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं स्मृति चिह्न देकर स्वागत किया गया। तदुपरान्त माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी द्वारा राजभाषा सप्ताह का उद्घाटन किया गया। उक्त अवसर पर राजभाषा संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमे मुख्य अतिथि

के के रूप में प्रो. हरिकेश सिंह, पूर्व कुलपति, जे. पी. विश्वविद्यालय, छपरा उपस्थित रहे। सगोष्ठी में **हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप और चुनौतियाँ** विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. रामसुधार सिंह पूर्व विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, यू.पी. कालेज, वाराणसी एवं विशिष्ट वक्ता के रूप में श्री राजेश गौतम, कार्यक्रम प्रभारी (आकाशवाणी एवं दूरदर्शन), वाराणसी ने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए माननीय कुलपति महोदय ने कहा कि हिंदी का प्रयोग उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर है एवं आज बाजारवाद के युग में हिंदी शीघ्र ही विश्वभाषा के रूप में उभरकर सामने आएगी। कार्यक्रम में स्वागत संबोधन संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा, संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव, रा.का.स. एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री दीपंकर द्वारा किया गया।

राजभाषा सप्ताह के उद्घाटन के अवसर पर दीप प्रज्ज्वलित करते प्रो. हरिकेश सिंह एवं माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

मंच पर उपस्थित अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मुख्य अतिथि एवं वक्तागण

कुलसचिव महोदया को स्मृति स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए डॉ. शुचिता शर्मा

माननीय कुलपति को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए श्री आर. के. मिश्र, प्रलेखन अधिकारी

प्रो. हरिकेश सिंह को स्मृति स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए डॉ. हिमांशु पाण्डेय, उपकुलसचिव

सरस्वती प्रतिमा पर माल्यार्पण के पश्चात् वन्दना करती हुई डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव

सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्जवलित करती हुई डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव

राजभाषा कार्यशाला का आयोजन - दिनांक: 26.09.2023 (अपराह्न)

दिनांक 26.09.2023 को संस्थान के उप कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। सर्व प्रथम अध्यक्ष एवं अतिथि वक्ताओं द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। उक्त अवसर पर श्री चन्द्र मोहन तिवारी, सेवानिवृत्त राजभाषा अधिकारी, सीएसआईआर, लखनऊ ने **राजभाषा के प्रयोग में आने वाली समस्याएँ एवं समाधान** विषय पर तथा प्रो. निरंजन सहाय, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी ने **राजभाषा नीति का ऐतिहासिक महत्व** विषय पर विस्तार से चर्चा की एवं दोनों वक्ताओं ने अन्य भाषाओं के प्रचलित मूल शब्दों को यथास्थिति लिप्यंतरित कर उन्हें ग्रहण करने के संबंध में जानकारी दी। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए उप कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय ने

उल्लेख किया कि हिंदी में काम करना सरल है, केवल अभ्यास की आवश्यकता है। एक बार झिझक दूर होने के उपरान्त कोई असुविधा नहीं रह जाएगी । कार्यक्रम का संचालन डॉ. सुशील कुमार सिंह, स्वागत संबोधन श्री आर. के. मिश्रा एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री भगवान पाण्डेय द्वारा किया गया।

कार्यक्रम में उपस्थित संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी

कार्यशाला में वक्तव्य देते श्री चन्द्र मोहन तिवारी, राजभाषा अधिकारी (सेवानिवृत्त), सीएसआईआर, लखनऊ

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक - दिनांक: 27. 09.2023 (अपराह्न)

दिनांक 27.09.2023 को अपराह्न 2.30 बजे माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा ने नवगठित राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों का स्वागत किया। बैठक में राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम 2023-24 में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के संबंध में विस्तृत चर्चा हुई । माननीय कुलपति महोदय ने सदस्यों को अधिकाधिक सरकारी कार्य हिंदी करने हेतु निदेशित किया। बैठक में तिमाही रपट के मदों एवं संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली के मदों पर भी चर्चा हुई। अध्यक्ष महोदय ने लक्ष्यों को शीघ्र पूरा करने के लिए आदेशित किया। कार्यक्रम की सम्पूर्ण कार्रवाई पावर प्वाइंट प्रजेंटेशन के माध्यम से राजभाषा परामर्शी श्री भगवान पाण्डेय द्वारा किया गया।

वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन - दिनांक: 28. 09.2023 (अपराह्न)

संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा की अध्यक्षता एवं डॉ. रामसुधार सिंह, डॉ. रमेश चन्द्र नेगी एवं श्री प्रमोद सिंह के निर्णायकत्व में दिनांक 28.09.2023 को **उच्च शिक्षा का माध्यम पूर्णत: हिंदी में होना देश हित में है अथवा नहीं है? (पक्ष/विपक्ष)** विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

सर्वप्रथम गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष एवं निर्णायकों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं स्मृति चिह्न देकर उनका स्वागत किया गया। उक्त प्रतियोगिता में संस्थान के कार्मिकों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया एवं प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा सांत्वना पुरस्कार की घोषणा की गई। कार्यक्रम का संचालन डॉ. सुशील कुमार सिंह, स्वागत संबोधन श्री भगवान पाण्डेय एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री प्रमोद सिंह द्वारा किया गया।

सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित करते डॉ. रमेश चन्द्र नेगी

सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित करती हुईं डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव

श्री प्रमोद सिंह, सहायक कुलसचिव को स्मृति चिन्ह प्रदान करते हुए श्री कुनसंग नमग्याल

डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव को स्मृति चिन्ह प्रदान करते हुए डॉ. अनुराग त्रिपाठी

मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन - दिनांक 29. 09. 2023 (अपराह्न)

दिनांक 29.09.2023 को गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष एवं निर्णायकों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं स्मृति चिह्न देकर स्वागत किया गया। डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव की अध्यक्षता एवं डॉ. हिमाशु पाण्डेय, श्री आर. के. मिश्रा तथा डॉ. ताशी दावा के निर्णायकत्व में मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें श्री भगवान

पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी द्वारा राजभाषा हिंदी, संस्थान से संबंधित प्रश्नों के साथ-साथ सम-सामयिक विषयों पर प्रश्न पूछे गए तथा प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा सांत्वना पुरस्कार का निर्णय किया गया। स्वागत संबोधन- श्री भगवान पाण्डेय, संचालन- डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. शुचिता शर्मा द्वारा किया गया।

सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित करते डॉ. हिमांशु पाण्डेय, उपकुलसचिव

डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव को स्मृति चिन्ह प्रदान करते हुए डॉ. ए. के. राय

श्री आर. के. मिश्रा, प्रलेखन अधिकारी को स्मृति चिन्ह प्रदान करते हुए डॉ. अनुराग त्रिपाठी

मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता मे प्रश्न पूछते हुए श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी

पुरस्कार वितरण एवं कवि सम्मेलन का आयोजन - दिनांक: 30.09.2023 (अपराह्न)

दिनांक 30.09.2023 को अपराह्न प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, माननीय कुलपति महोदय की अध्यक्षता एवं प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा, निदेशक, मानव संसाधन विकाश केन्द्र, काशी हिंदू विश्वविद्यालय के मुख्य आतिथ्य में पुरस्कार वितरण एवं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम उक्त अवसर पर गणमान्य व्यक्तियों द्वारा माँ सरस्वती की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त गणमान्य व्यक्तियों को भोट परम्परा के अनुसार खतक एवं स्मृति चिह्न प्रदान कर स्वागत किया गया। उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि ने बहुत ही आत्मीयता के साथ संस्थान परिवार एवं अपने संबंधों को अभिव्यक्त

किया। साथ ही अपने पिता द्वारा लिखित बाल कविताओं का वाचन करते हुए अपने संस्मरण सुनाए। उन्होंने सभी भाषाओं के सम्मान पर बल देते हुए राजभाषा के प्रयोग पर बल दिया। अपने अध्यक्षीय संबोधन में माननीय कुलपति महोदय ने अन्य भाषा के शब्दों को ग्रहण करते हुए हिंदी को समृद्ध करने एवं वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने पर बल दिया। कार्यक्रम में राजभाषा की विभिन्न प्रतियोगिताओं में स्थान प्राप्त करने वाले कार्मिकों को पुरस्कृत किया गया।

सप्ताह समारोह के समापन के अवसर पर एक भव्य कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. अशोक सिंह, डॉ. प्रकाश उदय, डॉ. शबनम, डॉ. नसीमा निशा एवं श्री रामायण धर द्विवेदी ने काव्य पाठ किया। उक्त कार्यक्रम में स्वागत संबोधन- डॉ. अनुराग त्रिपाठी, संचालन- प्रो. रामसुधार सिंह एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. हिमांशु पाण्डेय द्वारा किया गया।

सरस्वती प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित करते
प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी एवं प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

माल्यार्पण के पश्चात् वन्दना करतीं
डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव

विजेताओं को पुरस्कार प्रदान करते हुए
प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

विजेताओं को पुरस्कार प्रदान करते हुए
प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

विजेताओं को पुरस्कार प्रदान करते हुए
प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

विजेताओं को पुरस्कार प्रदान करते हुए
प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

सभागार का दृश्य

कवयित्री को स्मृति चिह्न प्रदान करतीं
डॉ. शुचिता शर्मा

डॉ. अशोक सिंह को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए

डॉ. सुनीता चन्द्रा, कुलसचिव को समृति चिह्न
प्रदान करते हुए

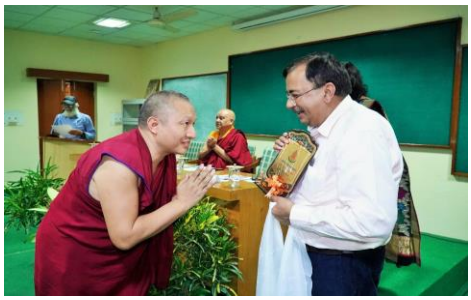

प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए

कार्यक्रम में सम्बोधित करते हुए प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक - दिनांक: 27.12.2023

दिनांक 27.12.2023 को अपराह्न माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी की अध्यक्षता में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया, जिसमें राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम 20223-2024 में निर्धारित लक्ष्यों, तिमाही रपट के मदों एवं संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली के मदों पर पावर प्वाइंट प्रस्तुति के माध्यम से चर्चा हुई। अध्यक्ष महोदय ने लक्ष्यों को शीघ्र पूरा करने का आदेश दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, स्वागत संबोधन डॉ. सुशील कुमार सिंह एवं पावर प्वाइंट प्रस्तुति श्री भगवान पाण्डेय द्वारा किया गया।

हिंदी कार्यशाला का आयोजन - दिनांक: 10.01.2024

राजभाषा कार्यान्वयन समिति, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी द्वारा विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी की अध्यक्षता में दिनांक 10.01.2024 को अपराह्न 2.30 बजे से अतिश सभागार में राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। उक्त अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में प्रो. राजेश लाल मेहरा, अध्यक्ष, लोक सेवा आयोग, मध्य प्रदेश एवं विशिष्ट वक्ता के रूप में श्रीमती माधुरी यादव, अनुसंधान अधिकारी, जन जातीय कार्य विभाग इंदौर ने हिंदी को जनमत की भाषा बनाना, बगैर उनकी मातृभाषा को भूले, विषय पर विद्वतापूर्ण विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम में स्वागत संबोधन डॉ. हिमांशु पाण्डेय, उप कुलसचिव, विषय प्रवर्तन डॉ. रामसुधार सिंह, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, यू.पी. कालेज, वाराणसी, संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव रा.का.स. एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री दीपंकर, निजी सचिव, कुलपति ने किया।

विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यशाला में दीप प्रज्वलित करते हुए डॉ. राजेश लाल मेहला, अध्यक्ष लोक सेवा आयोग, मध्य प्रदेश

विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यशाला में मंगलाचरण करती हुई संस्थान की छात्राएँ

श्रीमती माधुरी यादव, अनुसन्धान अधिकारी, जनजातीय कार्य विभाग, इन्दौर को स्मृति चिह्न प्रदान करती संस्थान की कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा

विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यशाला में उपस्थित श्रोतागण

हिंदी कार्यशाला का आयोजन - दिनांकः 23.03.2024

राजभाषा कार्यान्वयन समिति, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी द्वारा दिनांक 23.03.2024 को अपराह्न 2.30 बजे से राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। उक्त कार्यशाला का उद्घाटन एवं अध्यक्षता कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा द्वारा किया गया। उक्त अवसर पर प्रो प्रभाकर सिंह, आचार्य, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने राजभाषा हिंदीः भाषा की समावेशी संस्कृति तथा श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी ने राजभाषा नियम, अधिनियम एवं सांविधिक प्रावधान विषय पर विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिया। कार्यशाला का संचालन डॉ. सुशील कुमार सिंह, स्वागत संबोधन डॉ. अनुराग त्रिपाठी एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री दीपंकर द्वारा किया गया।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक - दिनांकः 27.03.2024

कुलसचिव महोदया की अध्यक्षता में दिनांक 27.03.2024 को अपराह्न 2.30 बजे से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया। उक्त बैठक में गृह मंत्रालय द्वारा जारी राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम पर व्यापक चर्चा हुई एवं कुलसचिव महोदया ने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए आदेशित किया। इसके साथ ही राजभाषा तिमाही रपट एवं संसदीय राजभाषा समिति की प्रश्नावली के विभिन्न मुद्दों पर गंभीर चर्चा हुई एवं कुलसचिव महोदया ने पूरा करने के लिए व्यापक कार्यक्रम बनाने का आदेश दिया। साथ ही संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाने वाली राजभाषा की वार्षिक गृह पत्रिका बोधिप्रभ के प्रकाशन के सम्बन्ध में चर्चा हुई एवं कुलसचिव महोदया ने आदेश दिया कि बोधिप्रभ पत्रिका के आगामी अंक के लिए

साहित्य, संस्कृति, भाषा, कहानी एवं कविता को समाहित करते हुए विभिन्न रचनाएं आमंत्रित करने संबंधी सूचना जारी की जाय। इसके लिए व्यक्तिगत रूप से संपर्क भी किया जाय।

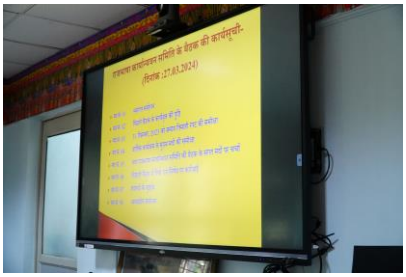

राजभाषा कार्यान्वयन समिति का एक दृश्य

राजभाषा कार्यान्वयन समिति का एक दृश्य

कार्यालयों में दैनिक प्रयोग में आने वाले कुछ प्रचलित अंग्रेजी शब्दों/वाक्यों की हिंदी

अंग्रेजी शब्द/वाक्य	हिंदी
Seen and returned	देखकर वापस किया जाता है
For information only	केवल सूचना के लिए
Submitted for order	आदेशार्थ प्रस्तुत
Kindly acknowledge	कृपया पावती दें
Needful has been done	आवश्यक कार्रवाई कर दी गई है
Draft reply is put for approval	उत्तर का मसौदा अनुमोदनार्थ प्रस्तुत
VC may please see for approval	कुलपति महोदय अनुमोदन के लिए देखें
Draft has been amended accordingly	मसौदा तदनुसार संशोधित कर दिया गया है
The proposal is self explanatory	प्रस्ताव अपने आप में स्पष्ट है
No further action is called for	आगे कोई कार्रवाई अपेक्षित नहीं है
No decision has so far been taken in the matter	इस मामले पर अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ है
No action seems to be called on our part	हमारी तरफ से कोई कार्रवाई नहीं की जानी है
We have no remarks to offer	हमें कोई टिप्पणी नहीं करनी है
This may be treated as most urgent	इसे अत्यावश्यक समझा जाय
We are not concerned with this	मुझसे संबंधित नहीं है
Required papers are placed below	अपेक्षित कागजात संलग्न हैं
We have no further comments	हमें आगे कुछ नहीं कहना है
We agree with "A" above	हम उपर्युक्त 'क से सहमत हैं
The proposal is quite in order	प्रस्ताव नियमानुकूल है
Administrative approval may be obtain	प्रशासनिक अनुमोदन प्राप्त किया जाए

Please discuss	कृपया चर्चा करें
Action may be taken as proposed	यथा प्रस्तावित कार्रवाई की जाए
Please circulate and file	कृपया परिचालित कर फाइल करें
Please prepare a note of the case	कृपया मामले के बारे में नोट तैयार करें
Explanation may be called for	स्पष्टीकरण मांगा जाए
Issue reminder urgently	तुरंत अनुस्मारक जारी करें
We are competent to grant permission	अनुज्ञा/अनुमति देने के लिए हम सक्षम हैं
Academic discussion	बौद्धिक चर्चा
Adverse entry	प्रतिकूल प्रविष्टि
Appropriate action	उपयुक्त कार्रवाई
Appointing authority	नियुक्ति प्राधिकारी
After careful consideration	सावधानी से विचार पूर्वक
Conditional acceptance	सशर्त मंजूरी/स्वीकृति
In anticipation of your approval	आपकी मंजूरी/अनुमोदन की प्रत्याशा में
Integrity is beyond doubt	सत्यनिष्ठा संदेह से परे है
Corrigendum may be put up	शुद्धिपत्र प्रस्तुत करें
Mis representation of the fact	तथ्यों की गलत बयानी

***

हिंदी जिनकी ऋणी है

वूँद वूँद से सींचा हिंदी पर किया उपकार
कुछ पत्थर नींव के हैं ये, नहीं समस्त आधार।
असंख्य सेवी हिंदी के, जिनके आधार खड़ी है
कुछ चेहरे इतिहास से ये, जिनकी हिंदी ऋणी है।

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
(मानव विश्वविद्यालय)
सारनाथ, वाराणसी
भारतीय भाषा उत्सव - एक भारत श्रेष्ठ भारत